

प्रोफ़ेसर म॰ फ़॰ नेस्तुर्ख़

मानवजाति

(मानववैज्ञानिक विवेचन)

अनुवादक: नरेश वेदी
चित्रकार: व्लादीमिर भ्रान

М. Ф. Нестурх
ЧЕЛОВЕЧЕСКИЕ РАСЫ
На языке хинди

विषय-सूची

पृष्ठ

भूमिका

मानव-प्रजातियों (races) की समस्या मानवविज्ञान (anthropology) की सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं में एक है। मानवविज्ञान आयु, लिंग, भौगोलिक और अन्य कारकों से जनित समस्त विभिन्नताओं के साथ मनुष्य के प्राकृतिक इतिहास के अध्ययन का विज्ञान है। मानव-प्रजातियां एक ही प्राकृतिक संवर्ग के रूप में वर्तमान मनुष्य के इतिहासतः उद्भूत भौगोलिक (प्रादेशिक) प्ररूप हैं।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संस्थापकों की कृतियों में प्रजातियों की उत्पत्ति और आदिम मानव—वर्तमान जातियों के दूरस्थ पूर्वजों—के जीवन की प्राकृतिक अवस्थाओं में संबंध, ऐतिहासिक विकास के दौरान प्रजातीय विभेदों के क्रमिक अभिलोपन, आधुनिक राष्ट्रों का निर्माण करनेवाले प्रजातीय मिश्रणों और नसलवाद (racism) की पूर्ण अमान्यता और उसके अवैज्ञानिक सारतत्व जैसी समस्याओं के बारे में अनेक मूल्यवान कथन हैं।

मानव-प्रजातियों के बारे में सही अवधारणा आज के समय में, औपनिवेशिक व्यवस्था के ढहने और पराधीन तथा औपनिवेशिक जनों द्वारा राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष के अपूर्व विकास के समय में विशेषकर बहुत बड़ा राजनीतिक तथा वैज्ञानिक महत्व रखती है। साम्राज्यवाद के सिद्धांतकारों ने वर्गीय, राष्ट्रीय तथा औपनिवेशिक उत्पीड़न का आधार प्रस्तुत करने के अपने प्रयासों में प्रजातियों की शारीरिक तथा मानसिक असमानता का, "ऊंची" और "नीची" प्रजातियों के अस्तित्व का, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में समर्थ और असमर्थ प्रजातियों के होने का मिथ्या "सिद्धांत" प्रतिपादित किया है।

नसलवाद प्रतिक्रियावादी राष्ट्रवाद और अंधराष्ट्रवाद से घनिष्ठतः संबद्ध है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की बाईसवीं कांग्रेस द्वारा स्वीकृत पार्टी-कार्यक्रम

इस तथ्य पर विशेष ज़ोर देता है कि राष्ट्रीय पूर्वाग्रह और भूतपूर्व राष्ट्रीय वैमनस्य के अवशेष ही उस क्षेत्र का निर्माण करते हैं, जिसमें सामाजिक प्रगति का विरोध सबसे लंबा, भीषण, कड़ा और दुर्दम्य हो सकता है।

नसलवादियों की मानवद्वेषी ईजादें मानवविज्ञान द्वारा प्रदत्त तथ्य सामग्री के एकदम विपरीत हैं।

इसलिए मानव-प्रजातियों पर एक सोवियत मानवविज्ञानी द्वारा लिखित एक सुलभ, किंतु वैज्ञानिक दृष्टि से संगत पुस्तक का प्रकाशन बहुत ही उपयोगी है। प्रोफ़ेसर म० फ़० नेस्तुर्ख की यह पुस्तक सोवियत मानवविज्ञान के सिद्धांतों और सोवियत तथा विदेशी विज्ञानियों द्वारा प्राप्त वास्तविक तथ्य सामग्री पर आधारित है। लेखक ने प्रजातियों की उत्पत्ति को समूचे तौर पर मानवजाति की उत्पत्ति से संबद्ध किया है और पाठकों को इन दोनों समस्याओं के वर्तमान स्तर से अवगत कराया है; उन्होंने अलग-अलग मानववैज्ञानिक (प्रजातीय) प्ररूपों और उनके समूहों के निर्माण, विकीर्णन तथा मिश्रण के इतिहास पर विस्तार से विचार किया है, नसलवाद की प्रतिक्रियावादी प्रकृति का परदाफ़ाश करने के लिए तथ्यों का उपयोग किया है और सिद्ध किया है कि उसका विज्ञान में कोई आधार नहीं है। प्रोफ़ेसर नेस्तुर्ख ने स्वाभाविकतया ख़ुद मानवविज्ञान की ओर ही अधिक ध्यान दिया है, किंतु एंगेल्स की इस विख्यात अवधारणा के अनुसार कि मानवविज्ञान मनुष्य और उसकी प्रजातियों की आकारिकी (morphology) तथा दैहिकी (physiology) से इतिहास में संक्रमण है, उन्होंने अन्य प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों – तुलनात्मक शारीर (anatomy), दैहिकी, जीवाश्मिकी (palaeontology), पुरातत्वविज्ञान (archaeology), जातिविज्ञान (ethnography), मनोविज्ञान और भाषिकी का भी व्यापक उपयोग किया है।

इस कृति में पाठकों को तृतीयक कल्प (Tertiary period) के मानवाभ वानरों (मनुष्य और वर्तमान मानवाभ वानरों के सुदूर पूर्वजों), सबसे प्रारंभिक मानवों (पिथिकैंथ्रोपस तथा साइनैंथ्रोपस), निएंडरथल मानव और आधुनिक प्रकार के फ़ासिल मानव के बारे में भी नूतनतम सूचना मिलेगी। लेखक ने सबसे प्रारंभिक मनुष्यों के प्राकृतिक वरण, भौगोलिक पार्थक्य, अंतःप्रजातीय संकरण, महाप्रजातियों के बनने के समयों और स्थानों, उनके विकीर्णन के ढंगों और क़बीलों, जातीय समूहों तथा जातियों के प्रजातियों से संबंध पर भी विचार किया है। वह पाठकों को पशु-जगत से मनुष्य की दुनिया की सैर पर ले जाते हैं और उन्हें मानव इतिहास के प्रारंभ से परिचित कराते हैं, जिसके दौरान जैव जगत पर

लागू होनेवाले विकास के नियमों का स्थान गुणात्मक दृष्टि से नये सामाजिक विकास के नियमों ने ले लिया है।

अंतिम अध्याय में प्रोफेसर नेस्तुर्ख़ ने नसलवाद का परदाफाश करने के अलावा "प्रजाति और भाषा", "प्रजाति और मनोवृत्ति" जैसी महत्वपूर्ण वैज्ञानिक समस्याओं को भी लिया है। उन्होने मानवजाति के प्रजातीय समूहों और भाषाई समूहों में किसी भी प्रकार के अनिवार्य संबंध के अभाव का विश्वसनीय प्रमाण दिया है; उन्होने यह भी दिखाया है कि सभी आधुनिक प्रजातियां और जातियां अपनी मानसिक क्षमताओं में एक समान ही होती हैं। उन्होने इस बात पर उचित ही ज़ोर दिया है कि बहुजातीय सोवियत संघ में समाजवादी और कम्युनिस्ट निर्माण तथा समाजवादी शिविर के दूसरे देशों में समाजवादी निर्माण की ज़बरदस्त सफलताओं ने इस प्रतिक्रियावादी कपोल कल्पना को पूर्णतः ध्वस्त कर दिया है कि मानवजाति "ऊंची" तथा "नीची" प्रजातियों में बंटी हुई है। अपने प्रजातीय गठन में भेदों के बावजूद सभी लोग सचमुच प्रगतिशील संस्कृति और विज्ञान का निर्माण करने में समर्थ हैं। हाल ही में उपनिवेशवाद के जूए से मुक्त हुए नवस्वतंत्र देशों के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास से भी नसलवाद की अवैज्ञानिक धारणा का खंडन होता है।

प्रोफ़ेसर न० न० चेबोक्सारोव
इतिहास के डाक्टर,
मिक्लूख़ो-माक्लाई पुरस्कार-विजेता,
मास्को

प्रस्तावना

प्रजातियों या नसलों का अध्ययन मानवविज्ञान की एक शाखा है; इसका लक्ष्य प्रजातियों का वर्णन और वर्गीकरण करना, यह दिखाना कि उनका विकास किस तरह हुआ और इस विकास के जीववैज्ञानिक तथा सामाजिक-आर्थिक कारकों का मूल्यांकन प्रस्तुत करना है। इसमें सन्निहित समस्याएं अनेक और जटिल हैं।

सोवियत मानवविज्ञान के अनुसार प्रजातियां मनुष्य जाति के वे जीववैज्ञानिक समूह हैं, जिन्होंने लंबे और जटिल विकास क्रम के दौरान रूप लिया है। प्रजातियों के अध्ययन में विशेषज्ञ मुख्यतः विज्ञान की शारीर, दैहिकी, प्रौणिकी तथा जीवाश्मिकी जैसी शाखाओं पर निर्भर करते हैं, किंतु मानवविज्ञानियों के लिए जातिविज्ञान, पुरातत्वविज्ञान, इतिहास और भाषिकी द्वारा प्रदत्त तथ्य सामग्री का उपयोग करना भी इतना ही महत्वपूर्ण है।

"प्रजाति" शब्द और-क़बीले, जाति तथा राष्ट्र जैसे सामाजिक समूहों के साथ उसका संबंध समझने में राष्ट्रीय प्रश्न पर मार्क्सवादियों की कृतियां बहुत महत्वपूर्ण हैं।

इस पुस्तक का उद्देश्य मुख्यतः मानववैज्ञानिक तथ्य सामग्री का उपयोग करते हुए मानव-प्रजातियों की धारणा की परिभाषा देना और विश्लेषण करना है।

अधिकांश सोवियत मानवविज्ञानी समस्त मानवजाति को तीन महाप्रजातियों – मंगोलाभ (Mongoloid), यूरोपाभ (Europeoid) और नीग्रोसम (Negroid) में विभक्त करते हैं। (जार्ज कुवियै द्वारा १८०० में प्रस्तावित पीली, श्वेत और काली प्रजाति नाम यद्यपि अब अधिकांश विद्वानों द्वारा कालातीत माने जाते हैं, फिर भी वे अब भी कभी-कभी सुनने में आ जाते हैं।) ये महाप्रजातियां शाखाओं, प्रजातियों और प्ररूप-समूहों में विभाजित की जाती हैं। चूंकि प्रजातियां अंतर्वर्ती

या संपर्क समूहों द्वारा जुड़ी हुई हैं, इसलिए आधुनिक मानवजाति को अनेक प्रजातीय समूहों का मिश्रण माना जा सकता है, जो मिलकर एक जीववैज्ञानिक समष्टि का निर्माण करते हैं। इससे यह बात काफ़ी हद तक समझ में आ जाती है कि किसी एक जाति मे विभिन्न प्रजातियों के प्रतिनिधि क्यों पाये जाते हैं, और, इसके विपरीत, क्यों कई-कई जातियों की बनावट में एक प्रजाति का प्रवेश हो सकता है ; सीमांकन की जातिवैज्ञानिक तथा मानववैज्ञानिक रेखाएं अनुरूप नहीं हैं।

प्रजातियां और प्रजातीय भिन्नताएं मानव मे कोई सनातन और अपरिवर्तनीय चीजें नहीं हैं। मार्क्स और एंगेल्स ने मानव देह और मनोवृत्ति में सामाजिक, आर्थिक और प्राकृतिक कारको के प्रभाव के अंतर्गत होनेवाले लगातार परिवर्तनों की अपनी सामान्य धारणा के अनुसार इस बात पर ज़ोर दिया था कि "स्वाभाविक रूप से पैदा होनेवाले कुल-भेद, जैसे, मिसाल के लिए, प्रजातीय आदि भेद... भी ऐतिहासिक विकास द्वारा समाप्त किये जा सकते हैं और किये जाने चाहिए।"[1] सोवियत संघ में इस दिशा में विशेष प्रगति की गई है, जहां ज़ारशाही के अंतर्गत खड़ी की गई प्रजातीय बाधाओं को समाजवाद के निर्माण की प्रक्रिया के दौरान ध्वस्त कर दिया गया।

नसलवाद का किसी भी प्रकार के वैज्ञानिक आधार से हीन एक प्रतिक्रियावादी सिद्धांत के रूप मे परदाफ़ाश करना हम अपनी पुस्तक का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य मानते हैं।

कुछ देशों के प्रतिक्रियावादी वैज्ञानिकों में विभिन्न नसलवादी सिद्धांत बहुत व्यापक हैं। वे अपनी ही जाति के शासक वर्ग को "ऊंची" प्रजाति और मेहनतकशों को "नीची" प्रजाति मानते हैं, या अपनी जाति के अलावा अन्य जातियों का "नीची" प्रजातियों के रूप में वर्गीकरण करते है और अपनी जाति को "ऊंची" प्रजाति बना देते हैं। इस प्रकार वे अनुचित रूप से लोगो के वर्गों द्वारा तथा अन्य सामाजिक-आर्थिक कारकों द्वारा समूहन को जीववैज्ञानिक समूहन के साथ उलझाते हैं।

यह नसलवादी सिद्धांतों के ज़रिये ही है कि "श्वेत" साम्राज्यवादी औपनिवेशिक जनों के गुलाम बनाये जाने और शोषण का औचित्य ठहराते हैं, जो अधिकांश मामलों में तथाकथित "अश्वेत" मंगोलाभ तथा नीग्रोसम प्रजातियो के हैं।

समाजवादी राष्ट्रमण्डल की सच्ची मानवतावादी विचारधारा नसलवादी "सिद्धांतों" के सर्वथा विपरीत हैं। सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देश

नसलवाद और राष्ट्रीय उत्पीड़न के सभी संभव रूपों के विरुद्ध संघर्ष कर रहे है और सभी जातियों की पूर्ण समानता के लिए लड़ रहे हैं।

सोवियत मानवविज्ञानी अपनी कृतियों में अन्य जातियों तथा प्रजातियों के प्रति अपने उसी आदर भाव को प्रतिबिंबित करते हैं, जो सदा से रूसी जनता का चारित्रिक लक्षण रहा है। जातियों और प्रजातियों की समानता के विचार को महान रूसी वैज्ञानिक मिख़ाईल लोमोनोसोव ने दो सौ बरस से भी ज्यादा पहले प्रस्तुत किया था।

सभी प्रजातियों की समानता के सिद्धांत का महान रूसी मानवविज्ञानी निकोलाई मिक्लूख़ो-माक्लाई ने समर्थन किया था, जिनकी कृतियों ने "ऊंची" और "नीची" प्रजातियो के सिद्धांत का प्रतिभापूर्ण खंडन किया है। रूस के क्रांतिकारी जनवादी भी इस विचार के उत्कट समर्थक थे। इस सिलसिले में अलेक्सांद्र रदीश्चेव और निकोलाई चेर्निशेव्स्की का विशेषकर उल्लेख किया जाना चाहिए, जिनकी मानववैज्ञानिक समस्याओं में दिलचस्पी थी और अपनी कृतियों में जिन्होंने उसके बारे मे लिखा है।

सोवियत मानवविज्ञान इस क्षेत्र में विश्व विज्ञान की उपलब्धियो का, और विशेषकर चार्ल्स डार्विन और उनके अनुयायियों के सिद्धांत का उपयोग करता हुआ प्रजातियों और उनकी उत्पत्ति की भौतिकवादी धारणा का सृजनात्मक विकास कर रहा है; वह उन अनेको तथ्यों का उपयोग करता है, जिन्हें विगत हाल में स्वदेश और विदेश के मानवविज्ञानियो द्वारा प्राप्त किया गया है।

प्रजातियो की समानता का सिद्धांत व्लादीमिर इल्यीच लेनिन की कृतियों मे गहनतापूर्वक प्रमाणित और निरूपित किया गया है; इसने सोवियत संघ की जातीय नीति मे अभिव्यक्ति पाई है और यह सोवियत संघ के संविधान मे अभिलिखित है।

लेखक ने जिस कार्य का दायित्व अपने ऊपर लिया है, उसमें निहित कठिनाइयों से वह अवगत है। पाठक यदि इस पुस्तक से प्रजातियों और उनकी उत्पत्ति की धारणा का सामान्य विचार प्राप्त कर पाये और नसलवाद की अवैज्ञानिक प्रकृति के कायल हो सके, तो लेखक अपने परिश्रम को सफल समझेगा।

मानव-प्रजातियों की परिभाषा

१. प्रजातीय लक्षण और उनका अध्ययन

अलग-अलग देशों के लोग त्वचा, केश और आंखों के रंग, केशों के प्रकार, पलकों, नाक, होंठों, चेहरे और मस्तक की आकृति में और शरीर की लंबाई और उसके अनुपातों में एक-दूसरे से बहुत भिन्न-भिन्न होते हैं। एक ही देश के लोगों में भी इन लक्षणों में उल्लेखनीय अंतर होता है, किंतु उनके कुछ संयोगों का ख़ासा आनुवंशिक चरित्र होता है और उनसे युक्त व्यक्तियों को किसी विशेष प्रजाति में वर्गीकृत करने के आधार का काम देता है। हम अधिक महत्वपूर्ण प्रजातीय लक्षणों में से कुछ पर संक्षेप में विचार करेंगे, लेकिन यह समझ लिया जाना चाहिए कि जीवन में उनका महत्व लिंग या आयु के कारण अंतरों की अपेक्षा कहीं कम है।

त्वचा, केश और आंख के तारे का रंग मेलेनिन नामक भूरे वर्णक (pigment) के कारण है, जो देह में कणों के रूप तथा विलयन में रहता है। आंखों तथा बालों का रंग काफ़ी हद तक त्वचा के वर्ण से संबद्ध होता है।

त्वचा के रंग की तीव्रता वर्णक की मात्रा और उसके कणों के आकार पर निर्भर करती है। नीग्रोसम और आस्ट्रेलाभ जनों में अन्य मानव-प्रजातियों की अपेक्षा अधिक वर्णक होता है और कण भी अधिक बड़े होते हैं, जिसके कारण त्वचा में से रुधिर वाहिकाएं नहीं दीख पड़तीं (और यदि दीख पड़ती भी हैं, तो बहुत कम ही)।

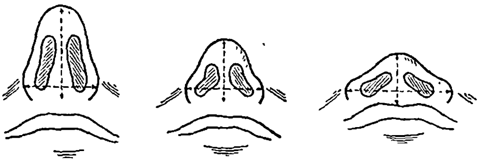
एक ही प्रजाति के विभिन्न मानववैज्ञानिक समूहों में भी त्वचा के रंग में बहुत अंतर होता है। जलवायुविक परिस्थितियों, सामाजिक कारकों और स्वास्थ्य का त्वचा के रंग पर बहुत ज़बरदस्त प्रभाव पड़ता है। त्वचा की वर्णयुक्तता की मात्रा

उभरी हुई नहीं होतीं, जैसा कि कई यूरोपाभों में होता है, तो वे संकरा चेहरा बनाती हैं, जो आगे की ओर निकला हुआ होता है।

जब चेहरे का एक तरफ़ से अध्ययन किया जाता है, तब इस बात की ओर ध्यान दिया जाता है कि मध्यम अथवा नासा प्रदेश और जबड़े किस सीमा तक आगे की ओर निकले हुए हैं। चिबुक का बाहर की ओर निकला होना प्रबल, मध्यम अथवा साधारण हो सकता है।

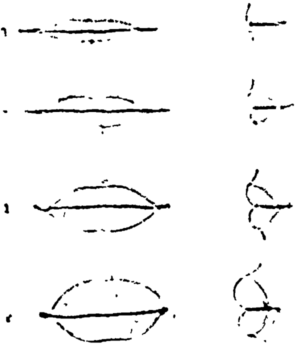
नेत्रों की आकृति (चित्र १) ऊपरी पलक पर बली की आकृति और आकार पर, कभी-कभी निचले पलक पर भी, और आंख जिस सीमा तक खुलती है, उस पर निर्भर करती है। अपनी बारी में पूरी तरह से खुली हुई आंख की आकृति इस बात पर निर्भर करती है कि त्वचा किस प्रकार वलित होती है और पलकों का निर्माण करनेवाले ऊतक की मोटाई कितनी है।

नाक की आकृति मुख्यतः नाक के सेतु की ऊंचाई, बांसे के रूप, नासाधार पर नथनों की चौड़ाई और नासाद्वारों के दीर्घ अक्षों की दिशा द्वारा निर्धारित होती है (चित्र २)।



चित्र २. नासाधार की आकृति और नासाद्वारों के दीर्घ अक्षों की दिशाओं में विभिन्नता (नीचे से देखने पर)

होंठों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है—त्वचीय, अंतर्वर्ती और श्लेष्मल। प्रजातीय लक्षणों की दृष्टि से इनमें सबसे दिलचस्प अंतर्वर्ती भाग है, जो आम तौर पर होंठ ही कहलाता है। मानवविज्ञानी होंठों को चार वर्गों—पतले, मध्यम, मोटे और बहुत मोटे—में वर्गीकृत करते हैं (चित्र ३)।

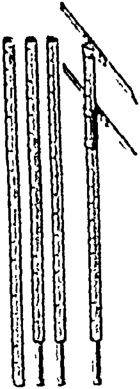


चित्र ३. होंठों की मोटाई के विकास में विभिन्नताएं
(सम्मुख तथा पार्श्व दृश्य):
१ – पतले, २ – मध्यम; ३ – मोटे; ४ – बहुत मोटे

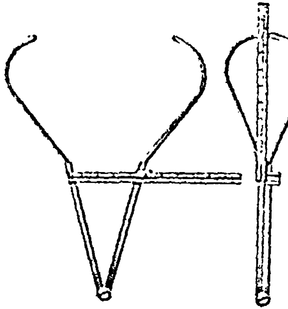
यदि मस्तक का ऊपर से अध्ययन किया जाये, तो यह देखना कठिन नहीं होगा कि अलग-अलग लोगों के सिर लंबे से लेकर गोल तक अलग-अलग आकृतियों के होते हैं। मानवविज्ञान में शीर्ष सूचकांक (cephalic index) का उपयोग किया जाता है, जो लंबाई के साथ चौड़ाई का अनुपात दिखाता है; इस प्रकार सिर जितना लंबा होगा, सूचकांक उतना ही छोटा होगा।

देह की लंबाई, अर्थात व्यक्ति की ऊंचाई एक महत्वपूर्ण लक्षण है; यह केवल आयु और लिंग के साथ ही नहीं, वरन लोगों के प्रादेशिक मानववंशानिक समूहों के साथ भी बदलती रहती है। विभिन्न समूहों के पुरुषों में यह १४२ सेंटीमीटर से लेकर १८१ सेंटीमीटर तक होती है, सारी मानवजाति के लिए इसका औसत लगभग १६५ सेंटीमीटर है। किसी एक समूह के भीतर भी ऊंचाई में काफ़ी वैभिन्य होता है।

प्रमापीय मापों के अध्ययन के लिए विशेष तरीकों और उपकरणों (चित्र ४-८) का उपयोग किया जाता है; हर मामले में बहुत बड़ी संख्या में व्यक्तियों का अध्ययन किया जाता है। विभिन्न पद्धतियों का अधिकतम एकीकरण वांछनीय, बल्कि आवश्यक भी है।

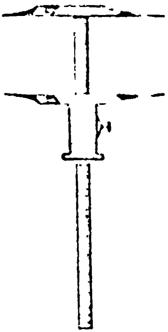


चित्र ४. देह तथा देह के भागों को मापने का उपकरण – मानवमापी (anthropometer)

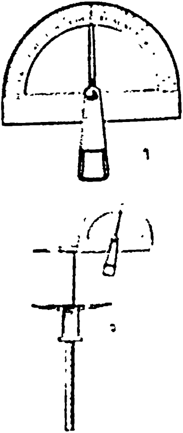


चित्र ५. मुख्यतः मस्तक और कपाल के मापने में प्रयुक्त परकार

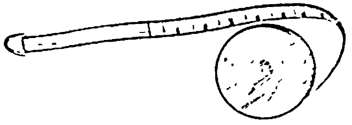
त्वचा, केश और नेत्रों का रंग (देखिये प्लेट १) निर्धारित करने के लिए विशेष पैमानों और निदर्श-संग्रहों का उपयोग किया जाता है; सोवियत संघ में अधिकतर मानवविज्ञानी व० व० बुनाक, प्र० इ० यार्ख़ो तथा म० प्र० सिनेल्निकोव द्वारा प्रस्तावित पैमानों और निदर्शों का उपयोग किया जाता है। पलक, नाक तथा



चित्र ६. शरीर के छोटे भागों तथा अलग-अलग अंगों के मापने में प्रयुक्त सरकवां प्रमापी



चित्र ७. चेहरे तथा कपाल कोणों के मापन में प्रयुक्त कोणमापी (goniometer): १ – सामान्य दृश्य ; २ – सरकवां प्रमापी पर आरोपित



चित्र ८. शरीर के विभिन्न भागों तथा अलग-अलग अंगों की परिधि के मापन में प्रयुक्त मिलीमीटर के निशानों से युक्त धातु का फीता



बालों के रंग तथा रूप, पुतली और त्वचा के रंग, नेत्रों की आकृति में विभिन्नताएं :

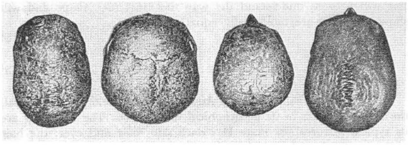
रंग में बदलते कड़े (ऊपर बायें), घुंघराले (ऊपर दायें), लहरीले बाल; हलकी, मध्यम तथा गहरी आंखें (आंखों के अंतिम चित्र मे मंगोलाभों और बुशमैनों का प्रारूपिक अधिनेत्र-कोण दिखाया गया है); हलके, मध्यवर्ती और गहरे रंग की त्वचा।

होंठों की प्राकृति प्र० इ० यार्ख़ो द्वारा तैयार किये प्रतिरूपों की सहायता से निर्धारित की जाती है।

उपर्युर्वर्णित तरीक़ों के अलावा प्रजातिविज्ञान में प्रजातीय लक्षणों के अध्ययन के कई अन्य तरीक़ों का भी उपयोग किया जाता है।

प्रजातीय लक्षणों को छायाचित्रों तथा सिने फ़िल्मों द्वारा अभिलिखित किया जाता है; चेहरे, हाथों तथा पैरों के रेखाचित्र बनाये और प्रतिरूप ढाले जाते हैं और केश के नमूने तथा कपाल संग्रहीत किये जाते हैं।

शरीर के विभिन्न अंगों, विशेषकर कंकाल तथा कपाल के शारीरी-मानववैज्ञानिक अध्ययन द्वारा महत्वपूर्ण तथ्यसामग्री प्राप्त की जाती है (चित्र ६)। खोपड़ियों



चित्र ६. कपाल की आकृति में विभिन्नताएं
बायें से दायें: दीर्घकपाल (अंडाकार); दो लघुकपाल (गोल);
मध्यकपाल (पंचभुज)

के अध्ययन में किये गये अपरिमित कार्य के फलस्वरूप मानवविज्ञान की एक नई शाखा ही पैदा हो गई है, जो कपालविज्ञान (craniology) कहलाती है।

लोगों के विशाल समूहों के वर्णन और मापन से प्राप्त आंकड़ों और कंकालों, खोपड़ियों तथा शरीर के विभिन्न अंगों के संग्रहों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है, जो अकसर अत्यंत जटिल होता है। इस सांख्यिकीय विश्लेषण के परिणामों को तालिकाओं, ग्राफ़ों तथा मूर्तियों के रूप में अभिलिखित किया जाता है।

इसके बाद इन आंकड़ों का उपयोग करके मानवविज्ञानी लोगों के कमोबेश बड़े समूहों द्वारा प्रतिनिधित प्रादेशिक मानववैज्ञानिक प्ररूपों को परिभाषित करते

हैं, जो बसी हुई दुनिया के विभिन्न भागों में इतिहासतः विकसित पर्याप्ततः स्थिर बाह्य लक्षणों (शरीर की आकृति तथा अनुपात) और आंतरिक संरचना–दोनों–से युक्त होते हैं।

प्रजातीय विश्लेषण से अक्सर इस बात की बेहतर समझ पैदा होती है कि किसी जाति का विकास किस तरह हुआ है। आम तौर पर हर जाति केवल एक नहीं, बल्कि अनेक मानववैज्ञानिक प्ररूपों से मिलकर बनती है, इसलिए प्रजातिविज्ञान द्वारा प्रदत्त सामग्री इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्रोत होती है।

हम अतीत में प्रयोग में लाये गये बहुसंख्य वर्गीकरणों को छोड़ देंगे और प्रजातियों के केवल उन अत्याधुनिक प्रमाणों को ही लेंगे, जो आवास, मानवजाति के विभिन्न समूहों की उत्पत्ति और उनके बीच निकटता की मात्रा जैसे महत्वपूर्ण कारकों पर आधारित हैं।

आधुनिक वर्गीकरण-पद्धतियां मानववैज्ञानिक प्ररूपों के प्रादेशिक समूहों पर आधरित हैं, जिनकी विशेषता समूह के विशिष्ट प्रजातीय लक्षणों की समष्टि होती है। ("प्रजातीय समूह" एक अनिश्चित पद है, जो लोगों या प्ररूपों के किसी भी समूह के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है; हमारे वर्गीकरण में उसका सदैव व्यवस्थित उपयोग नहीं किया जाता है।) मानववैज्ञानिक प्ररूपों के समूह प्रजातियों का निर्माण करते हैं, जो अपनी बारी में तीन "महाप्रजातियों" में संयुक्त हो जाती हैं – १. नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ अथवा विषुवतीय या अफ़्रीकी-ओशेनियाई, २. यूरोपाभ अथवा यूरेशियाई और ३. मंगोलाभ अथवा एशियाई-अमरीकी। यह प्रोफ़ेसर चेबोक्सारोव का वर्गीकरण है।[2]

या० या० रोगीन्स्की भी तीन महाप्रजातियों के वर्गीकरण को अपनाते हैं, किंतु वह उन्हें बाईस प्रजातियों में उपविभाजित करते हैं, जो आम तौर पर चेबोक्सारोव के मानववैज्ञानिक प्ररूप-समूहों के अनुरूप हैं।[3]

व० व० बुनाक का वर्गीकरण[4] उपरोक्त दोनों मानवविज्ञानियों के वर्गीकरण से एकदम भिन्न है। उनकी राय है कि आधुनिक प्रकार का फ़ासिल मानव ठेठ मध्यपाषाण काल या नवपाषाण काल में ही चार प्रजातीय शाखाओं में विभक्त हो गया था। इनमें से पहली "उष्ण कटिबंधीय शाखा" है, जिसमें एक ओर अफ़्रीकी नीग्रो, नीग्रील्लो पिग्मी और बुशमैन, और दूसरी ओर मेलानेशियाई, पापुआई, नीग्रीटो पिग्मी तथा विलुप्त टस्मानियाई सम्मिलित हैं। दूसरी "दक्षिणी शाखा" है, जिसमें वेद्दाह, आइनू, पोलीनेशियाई, मलय तथा आस्ट्रेलियाई आदिवासी शामिल हैं। तीसरी, "पश्चिमी शाखा" में यूरोपाभ स्वरूप के

इथिओपियाई सहित सोलह प्रजातीय प्रकार हैं। चौथी "पूर्वी शाखा" है और इसमें भी सोलह ही प्रकार हैं—सभी मंगोलाभ; इसमें उराली और अमरीकी इंडियन समूह सम्मिलित हैं।

बुनाक के वर्गीकरण में बारह उप-प्रजातियों में विभक्त अड़तालीस प्ररूप हैं।

अब हम मानवजाति की महाप्रजातियों के विशिष्ट लक्षणों को देखेंगे; इससे हमें यह समझने में सहायता मिलेगी कि प्रजातियों ने किस प्रकार रूप ग्रहण किया और पता चलेगा कि जीववैज्ञानिक दृष्टि से वे समान हैं।

२. नीग्रोसम-ग्रास्ट्रेलाभ महाप्रजाति

यह प्रजाति अफ़्रीकी-ग्रोशेनियाई अथवा विषुवतीय भी कहलाती है—अंतोक्त नाम उसके भौगोलिक वितरण के कारण दिया गया है। इस प्रजाति के लक्षण निम्नलिखित हैं (देखिये प्लेट २): त्वचा, केश तथा नेत्रों का गहरा रंग; सिर के बाल कड़े घूंघरों में अथवा लहरदार होते हैं; आम तौर पर चेहरे तथा देह पर बाल बहुत कम होते हैं, यद्यपि कुछ समूहों में ख़ासे घने दैहिक बाल होते हैं; कपोलास्थियां संकरी होती हैं; नाक पर्याप्त पूर्णता के साथ विकसित नहीं होती और अधिकांश मामलों में नथने चौड़े होते हैं; नासाद्वारों के दीर्घ अक्ष लगभग आड़े होते हैं; ऊपरी जबड़ा कुछ निकला हुआ होता है; होंठ मोटे होते हैं और ऊपरी होंठ आगे निकला हुआ होता है; मुंह ख़ासा चौड़ा होता है; इस प्रजाति के अनेक प्रतिनिधियों में टांगें धड़ की तुलना में लंबी होती हैं।

इस प्रजाति को अपना नाम त्वचा, केश तथा नेत्रों की गहरी वर्णयुक्तता से मिला है (लैटिन शब्द "नीगर" का अर्थ है काला)।

यद्यपि विषुवतीय महाप्रजाति दूर-दूर तक फैली हुई है, फिर भी आज इसकी संख्या सिर्फ़ लगभग ३६ करोड़ ही है, जो सारी मानवजाति के दस प्रतिशत के क़रीब है। इस प्रजाति का मुख्य आवास अफ़्रीका है, जिसका मध्य और दक्षिणी भाग काला अफ़्रीका कहलाता है; नीग्रोसम-ग्रास्ट्रेलाभ महाप्रजाति के इस भाग के प्रतिनिधि अपने को अफ़्रीकी कहते हैं।

अफ़्रीकी जन विषुवतीय महाप्रजाति की अफ़्रीकी या नीग्रोसम प्रजाति (लघु प्रजाति अथवा शाखा) का निर्माण करते हैं; इस शाखा का अधिकांश नीग्रो जनों (चित्र १०, ११ तथा १२) का ही है। इस प्रजाति के सबसे चारित्रिक लक्षण

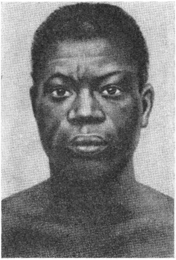


Fig. 10. Negro
(Sudanese group of Negroid race)

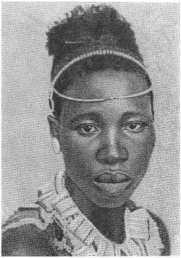
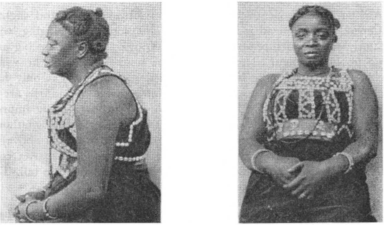
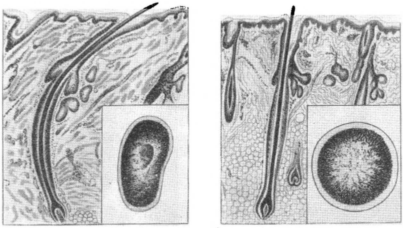


Fig. 11. Negro woman
(Sudanese group of Negroid race)



चित्र १२. दहोमी की नीग्रो स्त्री
(विषुवतीय महाप्रजाति की अफ़्रीकी शाखा)



चित्र १३. सिर की त्वचा की काट
बायें : घुंघराले बाल के साथ ; दायें : सीधे बाल के साथ।
आंतरिक चित्र : उन्ही बालों की आड़ी काट

सूडान के नीग्रो लोगों में देखे जा सकते हैं – गहरी भूरी अथवा चाकलेटी भूरी त्वचा ; सिर पर कड़े, सख्त कुंडलोंवाले बाल। बाल त्वचा से न्यून कोण पर निकलता है, त्वचा के नीचे ही मुड़ जाता है और आड़ी काट में अंडाकार होता है (चित्र १३)। आनन रोम (मूंछ, दाढ़ी) और दैहिक रोम (बग़लों और जघन प्रदेश में) अल्प विकसित होते है।

सूडानी नीग्रो लोगों में चेहरा अपेक्षाकृत छोटा और कुछ चपटा सा होता है। माथा ऊंचा और सीधा, कभी-कभी कुछ उभरा हुआ, अस्पष्टतः विकसित भ्रू-कटक के साथ होता है। आंखें बड़ी और गहरे कत्थई रंग की होती हैं। नासासेतु नीचा होता है और नथने बहुत चौड़े होते हैं ; नाक अकसर चपटी होती है, उसकी ऊंचाई चौड़ाई की आधी ही होती है ; ऐसे मामलों में नासाद्वारों के दीर्घ अक्ष आड़े होते हैं। होंठ मोटे होते हैं और कभी-कभी फूले हुए होने का आभास देते हैं। चेहरे का जबड़ोंवाला हिस्सा प्रायः आगे की ओर निकला हुआ होता है। ठोड़ी मामूली तौर पर विकसित होती है। सिर (ऊपर से देखने पर) आम तौर पर लंबा (दीर्घशीर्ष)

होता है।* ऊंचाई में काफ़ी विभिन्नता होती है, मगर नीग्रोसम प्रजाति के [illegible]
ही प्रतिनिधि लंबे होते हैं। टांगें धड़ की तुलना में लंबी होती हैं।

नीग्रोसम प्रजाति में भिन्न-भिन्न मानववंशानिक प्ररूप पाये जाते हैं, जिनके [illegible]
उन्हें सूडानी नीग्रो जनों से पृथक करते हैं। कुछ की त्वचा हलके रंग की [illegible]
है, तो कुछ की पतली सीधी नाक होती है, किसी समूह के होंठ मध्यम मो[illegible]
के होते हैं, तो कोई क़द में छोटा होता है और धड़ की तुलना में टांगें म[illegible]
लंबाई की होती हैं।** नीलनदीय नीग्रो लोगों की औसत लंबाई १८० सेंटीमी[illegible]
है और उनकी गणना संसार के सबसे लंबे लोगों में की जाती है।

असली नीग्रोसम प्रजाति के अलावा अफ़्रीकी शाखा में दक्षिण अफ़्री[illegible]
(बुशमैन), मध्य अफ़्रीकी (पिग्मी) तथा पूर्वी अफ़्रीकी (इथिओपियाई) स[illegible]
सम्मिलित हैं।

---

* सिरों का वर्गीकरण शीर्ष सूचकाक—लंबाई के चौड़ाई के साथ अनुपात के अनुसार किया जाता है, अर्थात चौड़ाई को १०० से गुणा करके लंबाई से भा[illegible] देकर। ७५.६ तक सूचकाक के सिर दीर्घशीर्ष (dolichocephalous) होते हैं ७६.० से लेकर ८०.६ तक के मध्यशीर्ष (mesocephalous) और ८१.० त[illegible] उससे ऊंचे सूचकाक के सिर लघुशीर्ष (brachycephalous) होते हैं।

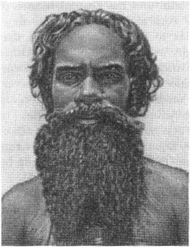
कपालों के अध्ययन में कपाल सूचकांक का उपयोग किया जाता है, जिसके आंकड़े शीर्ष सूचकांक से कुछ नीचे होते हैं। ७५.० से ७६.६ तक के कपाल मध्यकपाल, इससे निम्न सूचकांक के दीर्घकपाल और ८०.० से ऊपर के लघुकपाल होते हैं।

** एक ही लंबाई के लोगों के दैहिक समानुपात में भी बहुत वैभिन्न्य होता है; यह समानुपात देह (धड़, गरदन और सिर) की लंबाई का टांगों की लंबाई के साथ अनुपात है।

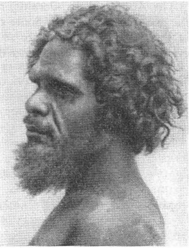
लोग छोटी देह और लंबी टांगोंवाले अर्थात दीर्घाकार (dolichomorphous), मध्यम टांगोंवाले या मध्याकार (mesomorphous) और लंबी देह तथा छोटी टांगोंवाले अथवा लघ्वाकार (brachymorphous) हो सकते हैं।

दीर्घाकारत्व और मध्याकारत्व मानववंशानिक प्ररूपों के कुछ समूहों के अभिलक्षक हैं और तीनों ही महाप्रजातियों में मिलते हैं। नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ महाप्रजाति के कुछ समूहों (नीग्रो, इथिओपियाई, आस्ट्रेलियाई) में दीर्घाकार लोग अधिक होते हैं, तो कुछ (पापुआई) मध्यम और कुछ (मेलानेशियाई, पिग्मी) लघ्वाकार होते हैं। दीर्घाकार लोग सामान्यतः ऊंचे कद के होते हैं; अधिकांश लोग मध्यमाकार होते हैं।

ग्रास्ट्रेलिया ग्रौर ग्रोशेनिया के जन नीग्रोसम-ग्रास्ट्रेलाभ महाप्रजाति की पूर्वी शाखा हैं। उनमें से कुछ, उदाहरण के लिए सोलोमन द्वीपसमूह के लोग, ग्रफ़्रीकी नीग्रो जनों के इतने समान हैं कि मानवविज्ञानियों तक के लिए उनमें विभेद करना कठिन है। ग्रास्ट्रेलियाई ग्रादिवासियों (चित्र १४ ग्रौर १५) के बारे में ऐसी



चित्र १४. ग्ररंता क़बीले का ग्रास्ट्रेलियाई



चित्र १५. योर्कोंत क़बीले का ग्रास्ट्रेलियाई

(विषुवतीय महाप्रजाति की ग्रोशेनियाई शाखा)

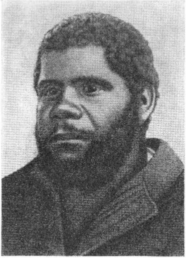
ग़लतफ़हमी नहीं हो सकती, यद्यपि वे नीग्रो लोगों से कुछ समता रखते हैं। चूंकि विषुवतीय महाप्रजाति की पूर्वी शाखा ग्रपना नाम ग्रास्ट्रेलियाई ग्रादिवासियों से ही ग्रहण करती है, इसलिए हम उनके वर्णन से ही प्रारंभ करेंगे।

इस समय शुद्ध ग्रास्ट्रेलियाई ग्रादिवासियों की संख्या ४०,००० के लगभग है, यद्यपि ग्रास्ट्रेलिया के उपनिवेशन के समय यह संख्या लगभग ३,००,००० थी।

ग्रास्ट्रेलियाई प्रजाति के ग्रनेक स्थानीय रूपभेद हैं, किंतु ग्राम तौर पर लोग ख़ासे समान ग्रौर उनके लक्षण प्रारूपिक होते हैं। इसका कारण उनका लाखों वर्ष

तक लगभग पूर्ण पार्थक्य में एक अपेक्षाकृत छोटे से महाद्वीप पर विकास है। मानवविज्ञानी कई दशकों से आस्ट्रेलियाई आदिवासियों का अध्ययन कर रहे हैं, लेकिन अभी तक सभी समूहों की पूरी तरह से जांच नहीं हो सकी है।

अधिकांश आस्ट्रेलियाई आदिवासियों के चारित्रिक लक्षण निम्नलिखित हैं: गहरी कत्थई अथवा गहरी चाकलेटी त्वचा; घुंघराले काले बाल; शरीर पर सुविकसित रोम, चेहरे पर रोम (दाढ़ी और मूंछ) अच्छी तरह विकसित होता है; चेहरा संकरा और नीचा होता है; माथा काफ़ी ढलवां और भ्रू-कटक बहुत विकसित होते हैं; आंखें गहरी कत्थई; नाक नीचे या मध्यम नासासेतु और बहुत चौड़े नथनोंवाली और बड़ी होती है; होंठ मोटे होते हैं, जबड़े काफ़ी निकले हुए होते हैं; ठोड़ी बहुत कम विकसित होती है; सिर लंबा (दीर्घशीर्ष) होता है; क़द औसत से ऊपर होता है और प्रजाति के कितने ही प्रतिनिधि लंबे होते हैं।



चित्र १६. टस्मानियाई
(विषुवतीय महाप्रजाति की
ओशेनियाई शाखा)

आस्ट्रेलियाई आदिवासी कोई अलग-थलग प्रजातीय समूह नहीं बनाते। न्यू गिनी तथा अन्य मेलानेशियाई द्वीपों पर मेलानेशियाई तथा पापुआई मानववैज्ञानिक प्ररूपों का निवास है, जो आस्ट्रेलियाइयों से संबद्ध हैं। टस्मानियाई, जिनका उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज उपनिवेशवादियों ने पाशविक तरीक़े से मूलोच्छेद कर दिया, मेलानेशियाई प्ररूप-समूह के ही थे (चित्र १६)।

---

* जब नासामूल धसा हुआ होता है, तो नासासेतु नीचा होता है। अच्छी तरह विकसित नासास्थियोंवाले व्यक्तियों में नासासेतु ऊंचा होता है और पार्श्विका में माथे की रेखा नाक के साथ लगभग सीधी रेखा बनाती है, जबकि नासासेतु कुछ ही धसा हुआ होता है। नासारेखा अपने अस्थिल तथा उपास्थिल भागों में, या उनमें से किसी भी एक भाग में सीधी, अवतल या उत्तल हो सकती है।

कुछ प्रतिक्रियावादी विद्वान आस्ट्रेलियाई आदिवासियों को निएंडरथल मानव जैसा ही मानते हुए उन्हें बहुत नीचे स्थान देते हैं। यह हास्यास्पद है, क्योंकि आस्ट्रेलियाई आदिवासी उतने ही आधुनिक प्ररूप के लोग हैं, जितने कि अन्य प्रजातियों के प्रतिनिधि; उनके विशिष्ट लक्षण, जैसे ढलवां माथा, विकसित भ्रू-कटक और अल्पविकसित चिबुक अन्य समूहों में भी देखे जा सकते हैं।



चित्र १७. दक्षिण भारत का टोडा पुरुष (यूरोपाभ महाप्रजाति की दक्षिणी शाखा)

आस्ट्रेलियाई आदिवासी यूरोपाभों सहित अन्य प्रजातियों के व्यक्तियों के साथ आसानी से अंतरविवाह कर लेते हैं और उनके बच्चे पूर्णतः सामान्य होते हैं। आस्ट्रेलियाई महाद्वीप पर सैकड़ों ऐसे लोग हैं, जो त्रिविध – टस्मानियाई-आस्ट्रेलियाई-यूरोपीय – मूल के हैं। आस्ट्रेलिया में कुल मिलाकर कोई ४०,००० आदिवासी अमिश्रित मूल के हैं।

३. यूरोपाभ महाप्रजाति

यूरोपाभ अथवा यूरेशियाई महाप्रजाति (देखिये प्लेट २) संख्या में बहुत बड़ी है और इसमें मानवजाति का लगभग ५३ प्रतिशत आ जाता है। अमरीका की, और बाद में आस्ट्रेलिया की खोज के साथ यूरोपाभ सारे संसार में फैल गये। तथापि इस प्रजाति का नाभिक पुरानी दुनिया – यूरोप, एशिया और उत्तर अफ़्रीका – में है। अकेले भारत में ही लगभग ५५ करोड़ भारतीय हैं, जो मुख्यतः यूरोपाभ हैं (चित्र १७)।*

---

* भारत की आबादी का प्रजातीय और दूसरे लिहाजों से अध्ययन खास तौर पर भारतीय मानवविज्ञानी ही करते हैं।[5]

सोवियत मानवविज्ञानी, इतिहास के डाक्टर प्रोफ़ेसर न० न० चेबोक्सारोव के नेतृत्व मे और सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के जातिविज्ञान

यूरोपाभों के चारित्रिक लक्षण निम्नलिखित हैं : त्वचा का रंग चेहरे पर गुलाबी रंगत के साथ हलके से गहरा, बल्कि भूरा तक होता है; सिर के बाल नरम और लहरदार (या सीधे) होते हैं और रंग में हलके से गहरे तक हो सकते हैं;* शरीर रोम प्रचुर अथवा मध्यम विकास दर्शाता है और चेहरे के बाल अकसर अत्यंत विकसित होते हैं; माथा सीधा या हलका ढलवां होता है।

चेहरे का मध्यवर्ती प्रदेश – नासामूल बिंदु से लेकर मुखबिंदु, यानी होंठों के बीच के बिंदु तक – काफ़ी ज़ोर से आगे निकला हुआ होता है; कपोलास्थियां और जबड़े प्रमुख नहीं होते; आंखों के कोने एक स्तर पर होते हैं और ऊपरी पलक पर वली अल्पविकसित होती है; अधिकांश मामलों में आंखें भूरी होती हैं, किन्तु धूसर, हलकी नीली और गहरी नीली आंखोंवाले भी अनेक व्यक्ति होते हैं,** विशेषकर यूरोप के उत्तरार्ध के निवासियों में; नाक पतली और ख़ासे ऊंचे नासासेतु के साथ होती है; नासाद्वारों के दीर्घ अक्ष पीछे से आगे की ओर लगभग

संस्थान द्वारा १९६४, १९६६ और १९७१ में कई योजनाबद्ध अभियान संगठित किये गये थे। इन अभियानों में सोवियत वैज्ञानिकों ने भारतीय वैज्ञानिकों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया।

१९७१ के अभियान का नेतृत्व प्रोफ़ेसर, डाक्टर म० ग० अब्दूशेलिश्वीली ने किया था।

* बालों का रंग कण-रूप मेलेनिन के घुले हुए मेलेनिन के साथ मात्रात्मक संबंध पर निर्भर करता है। घुले हुए वर्णक की अधिकतम मात्रा लाल बालों मे पाई जाती है। आम तौर पर कण-रूप वर्णक जितना अधिक होता है, बाल उतने ही गहरे रंग के होते हैं। गहरे रंग के बाल काले या गहरे भूरे होते हैं; मध्यम रंग मे कत्थई रंग की विभिन्न आभाएं आ जाती हैं; हलके रंग में सुनहरे रंग की विभिन्न आभाएं आती हैं। कभी-कभी ऐसे वर्णकहीन (ऐल्बीनो) व्यक्ति भी देखने में आते हैं, जिनके बालों मे वर्णक नही होता; ऐसे लोगों की न त्वचा मे और न आंखो मे ही वर्णक होता है।

** आंखों का, बल्कि तारामंडल (iris) का रंग केवल मेलेनिन कणों की मात्रा ही नही, बल्कि इस पर भी निर्भर करता है कि वह किस प्रकार जमा हुआ होता है। अगर वह तारामंडल मे गहराई पर हो, तो आंखें हलके रंग की या गहरी नीली लगती हैं, ख़ासकर तब, जब वाहिका परत (vascular layer) मे मेलेनिन नही होता और निक्षेप काफ़ी गहराई पर दिखाई दे जाता है। आंखों को तारामंडल के रंग के अनुसार गहरी, मिश्रित और हलकी मे वर्गीकृत किया जाता है।



चित्र १८. ताजिक
(यूरोपाभ महाप्रजाति की
दक्षिणी शाखा)



चित्र १९. नार्वेजियाई
(यूरोपाभ महाप्रजाति की
उत्तरी शाखा)

सीधी रेखा में होते हैं; होंठ पतले या मध्यम होते हैं और आगे निकले हुए नहीं होते; ठोड़ी मध्यम अथवा दृढ़तापूर्वक विकसित होती है; सिर की आकृति में बहुत विभिन्नता होती है – तीनों ही प्रकार बहुत व्यापक हैं।

यूरोपाभ महाप्रजाति दो शाखाओं (प्रजातियों) में विभक्त है – दक्षिणी अथवा भारत-भूमध्यसागरीय (चित्र १८) और उत्तरी अथवा अटलांटिक-बाल्टिक (चित्र १९)। प्रथमोक्त शाखा की त्वचा, बालों और आंखों का रंग गहरा और अंतोक्त का हलका होता है। दोनों शाखाएं मानववैज्ञानिक प्ररूपों के अंतर्वर्ती अथवा संपर्क समूहों द्वारा जुड़ी हुई हैं, जिनकी लाक्षणिक विशेषताएं गहरे बाल, लघुशीर्षता और मध्यम ऊंचाई हैं; रोगीन्स्की के वर्गीकरण (१९५६) में वे मध्य-यूरोपियाई प्रजाति का निर्माण करते हैं।

भारत-भूमध्यसागरीय प्रजाति के प्रतिनिधियों में भारतीय, ताजिक, आरमीनियाई, यूनानी, अरब, इतालवी और स्पेनी लोग हैं। उनके प्रारूपिक लक्षण हैं: काले, लहरीले बाल, कत्थई आंखें, उत्तल नासारेखा, बहुत संकरा चेहरा और तीनों ही प्रकारों का सिर।

रूसियों, बेलोरूसियों, पोलों, नार्वेजियाइयों, जर्मनों, अंग्रेज़ों और अधिक उत्तर में रहनेवाले अन्य यूरोपीय जनों में हम एक भिन्न ही लक्षण-समष्टि पाते हैं: बहुत हलके रंग की त्वचा, पीताभ या हलके भूरे बाल, धूसर अथवा नीली आंखें और अपेक्षाकृत लंबी नाक। ये उत्तरी या अटलांटिक-बाल्टिक प्रजाति का निर्माण करते हैं।

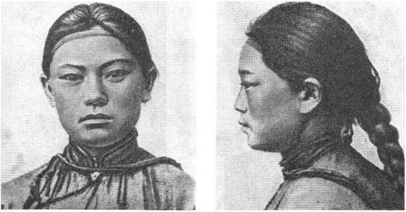
४. मंगोलाभ महाप्रजाति

मंगोलाभ अथवा एशियाई-अमरीकी महाप्रजाति (देखिये प्लेट २) में मानव-जाति का ३७ प्रतिशत भाग सम्मिलित है, जिसमें से ७० करोड़ लोग, अर्थात आधे से अधिक चीनी हैं। मंगोलाभ प्रजाति का अधिकांश एशिया में, विशेषकर उसके उत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी क्षेत्रों में पाया जाता है। मंगोलाभ प्रजाति ओशेनिया और अमरीकी महाद्वीप में भी फैल गई है।

सोवियत संघ के एशियाई भाग में अनेक मंगोलाभ समूह पाये जाते हैं: याकूत, बुर्यात, तुंगूस (एवेंक), चुक्ची, तुवाई, आल्ताइयाई गिल्याक (निव्हा), अल्यूत, एशियाई एस्कीमो तथा कितने ही और। सोवियत संघ के यूरोपीय भाग में मंगोलाभ मानववैज्ञानिक प्ररूप कलमीकों. नोगाइयों, बाशकीरियाइयों, तातारों, चुवाशों तथा अन्य कितनी ही जातियों की संरचना में विद्यमान है।

मंगोलाभ महाप्रजाति के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं: त्वचा हलकी या गहरी, पीली या पीताभ-भूरी रंगत के साथ; सिर के बाल लगभग सभी मामलों में सीधे और कड़े और रंग में आम तौर पर काले होते हैं; दाढ़ी और मूंछें सामान्यतः देर से विकसित होती हैं और बहुत कम होती हैं; तृतीयक शरीर रोम लगभग नहीं के बराबर होता है।

इस प्रजाति के, विशेषकर उत्तरी मंगोलाभों के अनेक मानववैज्ञानिक प्ररूपों के विशिष्ट लक्षणों में निम्न भी हैं: बड़ा चेहरा, जो बहुत थोड़ा-सा आगे निकला होता है; चौड़ी, निकली हुई कपोलास्थियां, जो उसे सपाट रूप दे देती हैं; आंखें भूरी होती हैं, नेत्र रेखा-छिद्र अधिकतर मध्यम, किंतु कई मामलों में संकरा होता है; कुछ व्यक्तियों में आंख का बाहरी कोण आंतरिक कोण से ऊंचा स्थित होता है; ऊपरी पलक पर सुविकसित वली होती है, जो कई मामलों में बरौनियों तक चली जाती है और अश्रुकक्ष (lacrimal bay) सहित आंख के आंतरिक कोण को पूर्णतः या अंशतः आच्छादित करके निचली पलक को पार कर जाती



चित्र २०. मंगोलियाई स्त्री
(मंगोलाभ महाप्रजाति की उत्तरी शाखा)

है और अधिनेत्र कोण (epicanthus) का निर्माण करती है; नाक मध्यम चौड़ाई की होती है, यदि वह आगे निकली होती है, तो बहुत थोड़ी-सी और आम तौर पर नीचे नासासेतु के साथ होती है (अमरीकी इंडियनों की नाक स्पष्टतः निकली हुई होती है और उसका ऊंचा नासासेतु होता है; एस्कीमो लोगों का नासासेतु बहुत नीचा होता है); अधिकांश मामलों में नासाद्वार बीच की स्थिति में होते हैं और उनके दीर्घ अक्ष एक-दूसरे से लगभग ६०° के कोण पर होते हैं; होंठ पतले या मध्यम होते हैं—ऊपरी होंठ आगे को निकला हुआ होता है; चिबुक कटक का विकास मध्यम होता है; कितने ही व्यक्तियों का सिर मध्यशीर्ष होता है।

मंगोलाभ महाप्रजाति तीन शाखाओं में विभक्त है। इनमें से पहली उत्तरी मंगोलाभ या एशियाई-महाद्वीपीय है; दूसरी दक्षिणी मंगोलाभ अथवा एशियाई-प्रशांतमहासागरीय और तीसरी अमरीकी है।

उत्तरी मंगोलाभ अथवा एशियाई-महाद्वीपीय शाखा के प्रतिनिधियों के रूप में हम बुर्यात तथा मंगोल जनों (चित्र २०) का उल्लेख कर सकते हैं। ये लोग काफ़ी प्रारूपिक मंगोलाभ हैं, यद्यपि उनमें कुछ मंगोलाभ लक्षण बहुत प्रत्यक्ष नहीं

होते – त्वचा, बालों और आंखों का रंग अपेक्षाकृत हलका होता है और बाल सदा ही कड़े नहीं होते, किंतु दाढ़ी बहुत अल्प होती है, होंठ पतले होते हैं और चेहरा चौड़ा और चपटा होता है।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में दक्षिणी मंगोलाभ शाखा का प्राधान्य है। इस शाखा के अधिकांश प्रतिनिधियों – मलय, जावाई और सुंदा जनों – की त्वचा गहरे रंग की, अधिक संकरा और नीचा चेहरा, मध्यम या मोटे होंठ और चौड़ी नाक होती है; उत्तरी मंगोलाभों के मुक़ाबले अधिनेत्र कोण कम आम होता है; दाढ़ी विकसित होती है, लेकिन बहुत अधिक नहीं; सिर के बाल कभी-कभी लहरीले होते हैं; ये लोग क़द में उत्तरी मंगोलाभों से ठिंगने और चीनियों से बहुत ठिंगने होते हैं।

मंगोलाभ प्रजाति की तीसरी शाखा – अमरीकी इंडियन – मध्यवर्ती चरित्र की है, क्योंकि इसमें मंगोलाभ लक्षण बहुत स्पष्टतापूर्वक व्यक्त नहीं होते और कुछ विशिष्टताएं ऐसी होती हैं, जो इस शाखा को यूरोपाभ प्ररूपों के सदृश बना देती हैं। अमरीकी इंडियनों (चित्र २१) के आम तौर पर सीधे, कड़े और रंग में काले बाल होते हैं; दाढ़ी, मूंछ और तृतीयक शरीर रोम अल्प होते हैं; त्वचा पीलापन लिये भूरे रंग की होती है; आंखें गहरी कत्थई होती हैं; कितने ही व्यक्तियों के चौड़े चेहरे होते हैं। ये वे लक्षण हैं, जो अमरीकी इंडियनों को प्रारूपिक मंगोलाभ बना देते हैं। तथापि पलक पर की वली (सुविकसित होने पर भी यह सामान्यतः अधिनेत्र कोण का निर्माण नहीं करती), मध्यम अथवा ऊंचे नासासेतु के साथ स्पष्टतः निकली हुई नाक और चेहरे के सामान्य प्रकार के कारण भी उनका यूरोपाभों से सादृश्य हो जाता है। कुछ क़बीलों के सिर पर लहरीले बाल होते हैं, औरों के दाढ़ी होती है।

अब हम प्रोफ़ेसर न० न० चेबोक्सारोव के मानव-प्रजातियों के वर्गीकरण (१९५१) को तालिका के रूप में दे सकते हैं।

महाप्रजाति	प्रजाति (शाखा)	मानववैज्ञानिक प्ररूप-समूह
नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ (विषुवतीय)	नीग्रोसम (अफ़्रीकी)	दक्षिण अफ़्रीकी (बुशमैन) मध्य अफ़्रीकी (पिग्मी) सूडानी (नीग्रो) पूर्वी अफ़्रीकी (इथियोपियाई)

	ग्रास्ट्रेलाभ (ग्रोशेनियाई)	ग्रंदमान (नीग्रोटो) मेलानेशियाई ग्रास्ट्रेलियाई (ग्रादिवासी) कुरील (ग्राइनू) श्रीलंका-सुंदा (वेद्दाह)
यूरोपाभ (यूरेशियाई)	दक्षिणी (भारत-भूमध्य-सागरीय)	दक्षिण भारतीय (द्रविड़) सं०* दक्षिण-पश्चिमी एशियाई भूमध्यसागरीयबाल्कान ग्रटलांटिक-कालासागरीय सं० पूर्वी यूरोपीय सं०
	उत्तरी (ग्रटलांटिक-बाल्टिक)	ग्रटलांटिक-बाल्टिक श्वेतसागरीय-बाल्टिक
मंगोलाभ (एशियाई-ग्रमरीकी)	उत्तरी मंगोलाभ (एशियाई-महाद्वीपीय)	उराली सं० दक्षिण साइबेरियाई सं० मध्य एशियाई साइबेरियाई (बाइकाल) ग्रार्कटिक सुदूर पूर्वी (पूर्वी एशियाई)
	दक्षिणी मंगोलाभ (एशियाई-प्रशांतमहासागरीय)	दक्षिण एशियाई पोलीनेशियाई सं०
	ग्रमरीकी इंडियन	उत्तर ग्रमरीकी मध्य ग्रमरीकी पातागोनियाई

५. सभी प्रजातियों के सामान्य लक्षण

संक्षेप में हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि एक-दूसरे से काफ़ी फ़ासलों द्वारा पृथक्कृत मानववंशज्ञानिक प्ररूप-समूहों में उल्लेखनीय विभिन्नताग्रों के बावजूद प्रजातियां ग्रपने बाह्य स्वरूप तक में घनिष्ठतः संबद्ध हैं।

*सं० – संपर्क ग्रथवा ग्रंतर्वर्ती समूह



चित्र २१. दक्षिण अमरीकी इंडियन – पातागोनियाई
(मंगोलाभ महाप्रजाति की अमरीकी शाखा)

मानव-प्रजातियों को व्यक्तियों के कमोबेश बड़े जीववैज्ञानिक समूह माना जा सकता है, जो आकारिकीय दृष्टि से अपेक्षाकृत समान हैं। प्रजातियां सामान्य मूल की हैं और उन्हें विकास की विभिन्न अवस्थाएं नहीं माना जा सकता। उनमें से प्रत्येक के लिए एक निश्चित, किंतु आनुवंशतः बदलती आकारिकीय तथा दैहिकीय लक्षण-समष्टि चारित्रिक होती है। प्रजातियों ने जीवन की प्राकृतिक तथा सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के संयुक्त प्रभाव के अंतर्गत रूप लिया है। इससे यह निष्कर्ष

निकलता है कि यद्यपि मानव-प्रजातियां सामान्यतः जंतुओं की उपजातियों के कमोबेश अनुरूप हैं, तथापि उन्हें उनसे गुणात्मक रूप में पृथक माना जाना चाहिए।

मानव-प्रजातियों के विशिष्ट लक्षण जंतुओं के अनुरूप अंतरजातिक उपविभागों की अपेक्षा प्रकृति के प्रति अनुकूलन के कारण कम हैं। यह संभव है कि इस तरह का अनुकूलन प्राचीनतम मनुष्य की प्रजातियों के लिए ही लाक्षणिक था। तथापि तब भी पर्यावरण का प्रभाव मनुष्य को उतना प्रभावित नहीं करता था, जितना उसने मनुष्य के जंतु पूर्वजों को प्रभावित किया था। इसका कारण यह है कि मनुष्य के विकास में आधारभूत भूमिका जीववैज्ञानिक नहीं, बल्कि सामाजिक कारकों की रहती है, जिसके कारण प्राकृतिक वरण ने अपना महत्व धीरे-धीरे गंवा दिया है।

इसके अलावा मनुष्य की प्रजातियां आसानी से अंतरविवाह कर लेती हैं। इस बात में वे वन्य पशुओं के अंतरजातिक समूहों से काफ़ी भिन्न हैं, जिनके विकास में संकरण का बहुत महत्व नहीं होता। यदि हम मनुष्य के विकास को एक वृक्ष के रूप में चित्रित करें, तो कई शाखाएं—केवल निकटवर्ती ही नहीं, बल्कि दूरवर्ती शाखाएं भी—एक-दूसरी की ओर जाती होंगी और अंतर्ग्रंथित होंगी।

मनुष्य में आनुवंशिक परिवर्तन मूलतः सामाजिक कारकों पर निर्भर करते हैं। यह विशेषता मानव-प्रजातियों का उच्चतर पशुओं के अनुरूप समूहों से बहुत स्पष्ट विभेद करती है।

इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि विलुप्त तथा आधुनिक मानव की प्रजातियों की उत्पत्ति और विकास ने वन्य (अथवा घरेलू) पशुओं की उपजातियों के विकास से भिन्न रूप ग्रहण किया। प्रजातियों का उद्गम चूंकि मानव-उत्पत्ति से घनिष्ठतः संबद्ध है, इसलिए अगला अध्याय मनुष्य के उद्गम और विकास के बारे में होगा।

मानव-प्रजातियां और मनुष्य का उद्गम

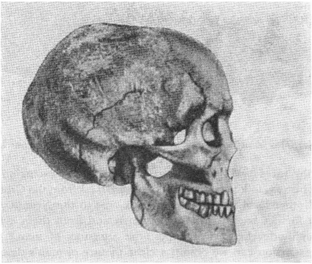
१. आधुनिक प्ररूप के फ़ासिल मानव

सोवियत मानवविज्ञानी इस सिद्धांत को मानते हैं कि आधुनिक मनुष्य निएंडर पूर्वजों से विकसित हुआ है। निएंडरथल मानव अपनी बारी में प्राचीनतम मनु से विकसित हुए, जिनका मूल अतिविकसित फ़ासिल मानवाभ वानरों की एक जा में था। यह सिद्धांत एकमूलवाद (monogenism) का सिद्धांत कहलाता है

कुछ विद्वानों का मत है कि मनुष्य वानरों की कई जातियों से उत्पन्न हु और उनमें से प्रत्येक ने प्राचीनतम मानव के और बाद में निएंडरथल मानव स्थानीय स्वरूपों के ज़रिये विकसित होकर आधुनिक महाप्रजातियों में से किसी ए का निर्माण किया। यह बहुमूलवाद (polygenism) का सिद्धांत है बहुमूलवाद के समर्थकों का दावा है कि आधुनिक मानव की प्रजातियां आपस जुड़ी हुई नहीं हैं, कि वे संबंधित नहीं हैं। तथापि बहुमूलवाद सिद्धांत का विज्ञा में कोई आधार नहीं है।

इस तरह प्रजातियों के उद्गम की समस्या मनुष्य के उद्गम और विकास की व्यापकतर समस्या से बंधी हुई है।[6] प्रजातियों की जड़ें पाने के लिए क्रोमेनन मानव और आधुनिक प्रकार के अन्य फ़ासिल मानवों से निएंडरथल मानव और फिर उससे भी पीछे प्राचीनतम मानव तक और फिर उनसे अतिविकसित फ़ासिल वानरों, मनुष्य के पूर्वजों तक ले जानेवाले पथ का अनुगमन करते हुए इतिहास की गहराइयों में एक संक्षिप्त यात्रा करना आवश्यक होगी।[7] इस प्रकार की यात्रा से ही हम मानवाभ वानरों की एक ही जाति से मनुष्य की उत्पत्ति का स्पष्ट चित्र प्राप्त कर सकते हैं, उन परिस्थितियों की खोज कर सकते हैं, जिनके अंतर्गत प्रजातियां उत्पन्न हुई थीं और यह सिद्ध कर सकते हैं कि प्रजातीय विकास की प्रक्रिया किन बातों में उस प्रक्रिया से भिन्न है, जिसके द्वारा पशुओं की उपजातियों ने रूप ग्रहण किया है।

लाखों साल पहले (उत्तर-पुरापाषाण युग के समय) पृथ्वी पर ऐसे लोग रह रहे थे, जिनकी बनावट सामान्यतः हमारे समकालीनों जैसी ही थी। इन लोगों की अस्थियों के अवशेष १८६८ में क्रोमैंगनन ग्राम (फ़्रांस) के निकट एक गुफा में मिले थे। उसके बाद इसी प्रकार के अवशेष पश्चिमी यूरोप में अन्य स्थानों पर (चित्र २२) और अफ़्रीका, एशिया तथा आस्ट्रेलिया में भी पाये गये हैं। क्रोमैंगनन



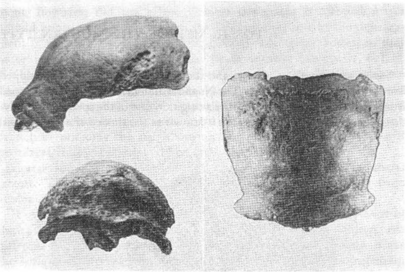
चित्र २२. ग्रोत्ते दि एनफ़ांत, मैंतों (फ़्रांस) से प्राप्त कपाल

कंकालों से मिलते-जुलते प्रारंभिक नवपाषाणकालीन कंकाल क्रीमिया में भी खोजे गये हैं – १९३६ में मुर्जाक-कोबा गुफाओं में[8] और १९२७ में फ़ात्मा-कोबा गुफाओं में[9]। १९५२ में वोरोनेज नगर (सोवियत संघ) के ४५ किलोमीटर दक्षिण में स्थित कोस्त्योन्की ग्राम में उत्खनन के समय कई कंकाल मिले थे।[10] १९५५ में क्रीमिया में बाख़्चीसराय के निकट स्तारोसेल्ये में एक प्रलंबी चट्टान के नीचे एक अठारह महीने के बच्चे का कंकाल मिला था।[11] इस प्रकार के लोगों को, जिनके अवशेष यूरोप में मिले हैं, क्रोमैंगनन मानव का नाम दिया गया है।

एक विलक्षण खोज १९६७ में व्लादीमिर नगर के निकट प्रो० न० बादेर द्वारा की गई थी। यहां, सुंगीर प्रपात के तट पर, एक उत्तर-पुरापाषाणकालीन वयस्क पुरुष (५५–६५ वर्ष) का कंकाल पाया गया था, जिसका क़द १८० सेंटीमीटर के निकट और वज़न ७१ किलोग्राम के लगभग था। यह पुरुष २२–२३

हज़ार वर्ष पहले जीता था। विख्यात सोवियत मानवविज्ञानी म० म० गेरासिमोव ने इस कंकाल के आधार पर उसकी मूर्ति बनाई।

अधिकारी विद्वानों की राय है कि क्रोमैग्नन लोग तथा आधुनिक प्ररूप के अनेक अन्य फ़ासिल मानव निएंडरथल मानव से ही उत्पन्न हुए थे। इस सिद्धांत का अंतर्वर्ती लक्षणों से युक्त अनेक कपालों (चित्र २३) की खोज से और आज के



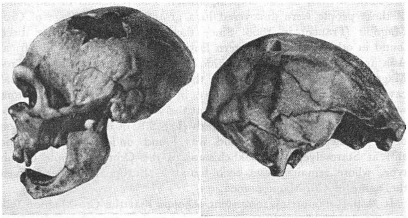
चित्र २३. पोदकूमोक (सोवियत संघ) से प्राप्त कपाल – एक तरफ़ से, सामने से और ऊपर की तरफ से देखने पर

अनेक लोगों की खोपड़ियों में अमिसलक्षक निएंडरथल लक्षणों की अनेक मिसालों से भी समर्थन होता है।[12]

खोपड़ी और समूचे तौर पर कंकाल की बनावट को देखते हुए कहा जा सकता है कि उत्तर-पुरापाषाणकालीन लोगों में तीन मुख्य प्रजातियां रूप ग्रहण कर रही थीं और ये उस आधार का निर्माण करती हैं, जिससे आधुनिक मानव की महाप्रजातियां विकसित हुईं।

२. निएंडरथल मानव—आधुनिक मानव के पूर्वज

निएंडरथल लोग (चित्र २४ तथा २५) क्रोमेन्यन मानवों तथा उनके समकालीनों के पूर्वज थे और साथ ही प्राचीनतम मनुष्यों के वंशज भी थे। निएंडरथल लोग पुरानी दुनिया में, और उनमें से कुछ सोवियत संघ में, मिसाल के लिए, क्रीमिया में कीइक-कोबा'' और उज़्बेकिस्तान में तेशीक-ताश'' की गुफाओं में मिले



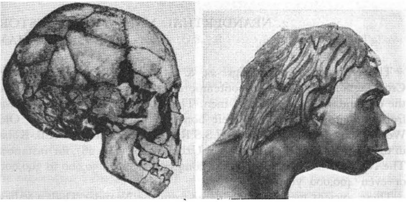
चित्र २४. ला शापेल-ओसां (फ़्रांस) से प्राप्त निएंडरथल कपाल (१९०८)

चित्र २५. न्गांदोंग (जावा) से प्राप्त निएंडरथल कपाल (१९३१)

अपनी अस्थियों (चित्र २६) और औज़ारों के कितने ही अवशेषों से जाने जाते हैं। निएंडरथल मानव बहुत समय तक रहे—कोई ५०,००० साल से लेकर ३,००,००० साल पहले तक।

इन प्राचीन मनुष्यों को अपना नाम जर्मनी में निएंडरथल नामक घाटी से मिला है, जहां १८५६ में एक ऐसे मानव कंकाल के अवशेष मिले थे, जो बनावट में आधुनिक मानव कंकालों से बहुत भिन्न है। डार्विन ने निएंडरथल कपाल-तोरण का अपनी कृतियों में उल्लेख किया था।

निएंडरथल के कंकाल में खोपड़ी अपने विराट आकार के कारण अलग ही स्थान रखती है; इसके विशिष्ट लक्षण हैं: अंडाकार कपाल, आंखों के ऊपर भारी



चित्र २६. दक्षिण उज़्बेकिस्तान (सोवियत संघ) में तेशीक़-ताश गुफा से प्राप्त निएंडरथल बालक का कपाल और चेहरा (१९३८)
(म० म० गेरासिमोव द्वारा पुनर्स्थापना तथा पुनर्निर्माण)

भ्रू-कटक, ढलवां माथा और नीचा कपाल-तोरण। खोपड़ी की पश्चकपालास्थि ऊपर से दबाव के कारण रूप लिये लगती है; इसके ऊपर का भारी कटक ग्रीवा पेशियों के लिए संयोजन के साधन का काम देता था। एक बहुत ही आकर्षक लक्षण ऊपरी जबड़े तथा नाक की हड्डियों का प्रबल विकास है। निएंडरथल मानव का विशाल निचला जबड़ा लगभग पूर्णतः चिबुक-कटकविहीन है; दांतों में अकसर आधुनिक मनुष्य की अपेक्षा बड़ी दंत गुहिका है।

निएंडरथल लोग आधुनिक मनुष्य जितने लंबे नहीं थे। उनका कंकाल कहीं अधिक स्थूल है और उसके बाह्य उभार कहीं अधिक स्पष्ट हैं, जो शक्तिशाली पेशियों के होने का प्रमाण है। मेरुदंड किंचित ही टेढ़ा है, जो ग्रैव कशेरुकाओं की आकृति के साथ उसे मानवाभ कपियों से कुछ सादृश्य प्रदान कर देता है। जांघ स्पष्टतः टेढ़ी है और पिंडली जांघ के मुकाबले छोटी है; इससे यह पता चलता है कि निएंडरथल लोग संभवतः अपनी गतिविधियों में बहुत फरतीले नहीं थे (चित्र २७)।

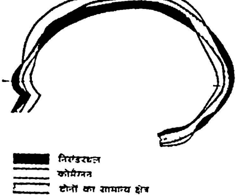
निएंडरथल मानव के कपाल का औसत आयतन लगभग आधुनिक मनुष्य के बराबर ही था – लगभग १,४०० घन सेंटीमीटर। तथापि मस्तिष्क, विशेषकर

ललाट प्रदेश, प्राधुनिक मानव मस्तिष्क के मुकाबले कम विकसित और कम जटिल था।

निएंडरथल अथवा आदिम मनुष्य पुरानी दुनिया – यूरोप, अफ़्रीका और एशिया – के विस्तृत प्रदेशों पर फैल गये। इस विस्तृत आवास भूमि में वे अनेक भिन्न-भिन्न प्रकारों में पाये



चित्र २७. एक निएंडरथल पुरुष (न० अ० सिनेल्निकोव तथा म० फ़० नेस्तुर्ख़ द्वारा पुनर्निर्माण, चित्रकार स० ग० ओवोलेंस्की)



चित्र २८. फासिल मानवों के कपाल की प्राकृतियों का प्रारेखीय चित्र

जाते थे। निएंडरथल मानवों की अनेक प्रजातियां विज्ञान को ज्ञात हैं। उनमें से कुछ का मस्तिष्क दूसरी प्रजातियों की तुलना में बड़ा था और यह विशेषता उन्हें प्राधुनिक मानव के प्ररूप के निकट ले आती है; अन्यों के कपालों का आयतन कम था, लेकिन वे और बातों में प्राधुनिक मानव के अधिक निकट थे (चित्र २८)। सोवियत मानवविज्ञानी इस मत को स्वीकार नहीं करते कि प्राधुनिक मानव-प्रजातियां सीधे निएंडरथल समूहों से उत्पन्न हुई हैं।[15] तथापि निएंडरथल संरचनात्मक प्ररूप निस्संदेह प्राधुनिक प्ररूप में विकसित हुआ और उससे प्रजातियां विकसित हुईं।

३. प्राचीनतम मनुष्य – निएंडरथल मानव के पूर्वज

निएंडरथल मानवों के पूर्वज पुरानी दुनिया के अधिक प्राचीन लोग थे। निएंडरथलों के पूर्वगामियों में हाइडेलबर्ग मानव, एटलेंथ्रोपस, तेलेंथ्रोपस, साइनेंथ्रोपस, पिथिकेंथ्रोपस थे। उनमें से कुछ को निएंडरथल प्रकार से अधिक समानता है, तो अन्य वानरों के अधिक निकट हैं।

प्राचीनतम मनुष्य शारीरिक दृष्टि से वानर और मानव के अंतर्वर्ती प्रकार हैं। मानवजाति के इन फ़ासिल प्रतिनिधियों का अभी तक वानरों से जबरदस्त सादृश्य है। उनके बहुत ढलवां माथे और भारी भ्रू-कटक होते हैं, खोपड़ी बहुत नीची होती है और ठोड़ी नहीं होती। लेकिन इन "मध्यवर्ती प्राणियों" के मस्तिष्क का आकार मानवाभ वानरों के मस्तिष्क के आकार से बहुत दूर है; उनका मस्तिष्क आयतन में ९०० से १२०० घन सेंटीमीटर तक है, जबकि सबसे बड़े मानवाभ वानर – गोरिल्ला – का मस्तिष्क ४५० से ७५० घन सेंटीमीटर तक का होता है।

प्राचीनतम मनुष्य औज़ारों के रूप में केवल प्राकृतिक वस्तुओं – डंडों, पत्थरों, आदि का ही उपयोग नहीं करते थे, उन्होंने कृत्रिम औज़ार बनाना शुरू भी कर दिये थे और उनमें से कुछ अग्नि का उपयोग भी जानते थे। इसलिए हम इन प्राणियों को प्राचीनतम मानव ही मान सकते हैं।[16]

ये प्रारंभिक मानव, जिनके अनेक लक्षण वानरों के थे, चतुर्थ कल्प के बिलकुल आरंभ में – कोई दस लाख साल पहले – उदित हुए। विकास की यह अवस्था बहुत ही लंबे समय – कोई पांच लाख साल – तक, चतुर्थ कल्प के मध्य में, ठेठ हिमयुग तक और उसके आरंभ तक चली।

प्राचीनतम मानवों में सबसे पहला पिथिकेंथ्रोपस (जावा) मानव या और उसके कुछ बाद साइनेंथ्रोपस (चीन) आया। उनके बहुत ही निकट हाइडेलबर्ग मानव (जर्मनी) है, जिसका निचला जबड़ा माउएर नामक गांव के पास रेत की एक खुली खान में २४.१ मीटर की ख़ासी गहराई पर मिला था।

भारी जबड़े और चिबुक के अभाव के दृष्टिगत उस सुदूर काल (लगभग चार लाख साल पहले) का हाइडेलबर्ग फ़ासिल मानव मानवाभ वानर से बहुत मिलता-जुलता था। तथापि जबड़े में सुव्यक्त मानव लक्षण हैं: (१) बीच में जगहों के बिना आपस में मिले हुए दांत; (२) चर्वणक दांतों (दाढ़ों) की पेषण सतह

पर दंताग्रों और खांचों की बनावट; (३) भेदक दांतों के छोटे सिरे, जो अन्य दांतों के आगे निकले हुए नहीं हैं; (४) जबड़े की नाल जैसी आकृति।

अभाग्यवश हाइडेलबर्ग मानव की और कोई हड्डी नहीं मिली है। हम उसके प्रस्तर उपकरणों के बारे में कुछ नहीं जानते, जो बहुत करके शैलीयाई (Chellean) प्रकार के, अर्थात बहुत भद्दे और आदिम थे। इसी प्रकार के उपकरण यूरोप, अफ़्रीका और एशिया के अनेक देशों में जानवरों (जैसे मैमथ, आदिम घोड़ा, एट्रूस्कन गैंडा) की हड्डियों के साथ-साथ पाये गये हैं और माउएर की रेत की खान में मिले औज़ारों जैसे ही हैं।

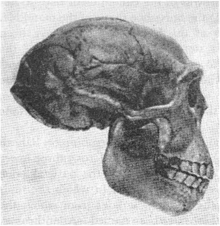
माउएर का तेर्नीफ़िन, या पालीकाओ (अल्जीरिया में मस्करा से १५ किलोमीटर) से लगभग २००० किलोमीटर का फ़ासला है, जहां १९५४ और १९५५ में अतिप्राचीन मानवों के तीन निचले जबड़े (इनमें से दो अपूर्ण थे) और कपाल की पार्श्विकास्थि (parietal bone) का एक टुकड़ा मिले थे। जिस इलाक़े में ये खोजें हुई थीं, वह एटलास पर्वतों के पड़ोस में है, जिससे वहां किसी समय रहनेवाले इन अतिप्राचीन लोगों को एटलेंथ्रोपस का नाम दिया गया है।

व० प० याकीमोव[17] का मत है कि एटलेंथ्रोपस का जबड़ा हाइडेलबर्ग मानव के जबड़े के बहुत समान होने पर भी उससे सुस्पष्टतः भिन्न भी है। यह साइनेंथ्रोपस तथा पिथिकेंथ्रोपस के जबड़ों के अधिक निकट है, जिनमें तेर्नीफ़िन लोगों को रखा जाना चाहिए। एटलेंथ्रोपस कंकालावशेषों की आदिम प्रकृति उन प्रस्तर उपकरणों के भद्देपन से पूरी तरह मेल खाती है, जो शैलीयाई या अगले – ऐशूली (Acheulean) काल के आरंभ में इस्तेमाल किये जाते थे।

१९४९ में अफ़्रीका के उलटे सिरे पर एक अत्यंत पुरातन मानव की एक और खोज की गई। योहान्नेसबर्ग के २५ किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में स्वार्तक्रांस की एक गुफा में जे० रोबिन्सन ने अधः अभिनूतनयुगीन (Lower Pleistocene) निक्षेपों में एक अपूर्ण निचला जबड़ा खोजा। यह जबड़ा हाइडेलबर्ग मानव के जबड़े से छोटा है, किंतु उसी की तरह स्थूल और अन्य संरचनात्मक समानताओं से युक्त है। यही बात उसी गुफा में १९५० में प्राप्त एक अन्य जबड़े के टुकड़े पर भी लागू होती है।

रोबिन्सन ने स्वार्तक्रांस मानव को केप तेलेंथ्रोपस का नाम दिया, क्योंकि वह केप प्रांत में मिला था और एक पूर्ण मानव (यूनानी शब्द "तेलेओस" – पूर्ण) का, न कि वानर का प्रतिनिधित्व करता है, जैसा कि अन्य विद्वान मानते थे।

तेलेंथ्रोपस, एटलेंथ्रोपस और हाइडेलबर्ग मानव – सब मानव विकास की सबसे प्रारंभिक अवस्था के हैं।[18]



चित्र २९. साइनेंथ्रोपस खोपड़ी (म० म० गेरासिमोव द्वारा पुनर्निर्माण)

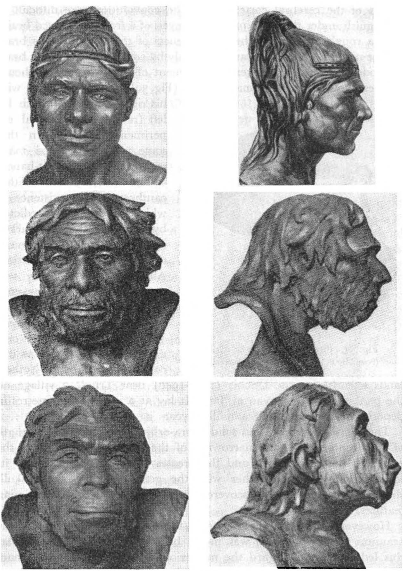
पहली साइनेंथ्रोपस खोपड़ी (चित्र २९) १९२९ में पेकिंग के ५४ किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम, चूकूतिएन की एक गुफा में चीनी मानवविज्ञानी पेई वेन-चुंग द्वारा खोजी गई थी।

चीनी जीवाश्मविज्ञानियों ने बाद में उसी गुफा में कई और साइनेंथ्रोपस खोपड़ियां खोजीं। मादा खोपड़ियों के मस्तिष्क कोशों का आयतन ८५० से १,००० घन सेंटीमीटर तक था। नर खोपड़ियां बड़ी थीं, उनमें से एक का आयतन १,२२० घन सेंटीमीटर तक था, जो कुछ आधुनिक मानववैज्ञानिक प्ररूपों, जैसे मिसाल के लिए, गोआहिरो इंडियनों (दक्षिण अमरीका) के कपाल-आयतन के निकट है। जहां तक मस्तिष्क के विकास का संबंध है (औसत आयतन १,०५० घन सेंटीमीटर), साइनेंथ्रोपस अपने पूर्वजों – मानवाभ वानरों – से पिथिकेंथ्रोपस के मुक़ाबले अधिक दूर था।

साइनेंथ्रोपस खोपड़ी में कुछ निएंडरथल लक्षण विद्यमान थे, जैसे कपाल-पार्श्विका प्रदेश में हलका-सा उभार और उसी आकृति का भ्रू-कटक। तथापि खोपड़ी वानरों की तरह निचले प्रदेश में सबसे अधिक चौड़ी है, जब कि निएंडरथल मानव की खोपड़ी मध्य प्रदेश में सबसे ज्यादा चौड़ी है; आधुनिक मानव में यह मस्तिष्क-पार्श्विका खंड के सशक्त विकास और कपाल-पार्श्विका उभारों के होने के कारण ऊपर की तरफ़ सबसे अधिक चौड़ी होती है।

साइनेंथ्रोपस मस्तिष्क के ललाट खंड अपेक्षाकृत कम विकसित थे, वे मानवाभ वानरों की प्रारूपिक तथाकथित "चोंच" के रूप में आगे और नीचे की ओर निकले हुए थे।

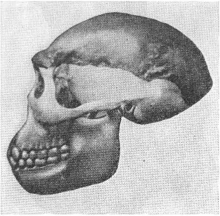
खोपड़ी के भीतरी भाग से ढाला गया एक कपाल सांचा आंतरिक अस्थि-उभारों को स्पष्टतः दर्शाता है, जो किसी हद तक मस्तिष्क के उत्तल भागों के अनुरूप हैं; उनमें लंबे खांचे हैं, जिनमें मस्तिष्क की बाहरी रुधिर वाहिकाएं थीं। लेकिन चूंकि ताज़ा निकाले गये मस्तिष्क तक के मोटे आवरण के नीचे कुंडलों को पहचानना मुश्किल होता है, इसलिए सांचे के अध्ययन से सिर्फ़ मोटा-सा अनुमान ही



चित्र ३०. फ़ासिल मानव
ऊपरी पंक्ति: क्रोमैग्नन; बीच की पंक्ति: निएंडरथल;
नीचे की पंक्ति: साइनेंथ्रोपस (म० म० गेरासिमोव द्वारा पुनर्निर्माण)

लगाया जा सकता है कि आधुनिक मानव की तुलना में साइनेंथ्रोपस का मस्तिष्क बनावट में कितना सरल था। प्रमस्तिष्क गोलार्धों का असमान विकास दिखाता है कि साइनेंथ्रोपस (चित्र ३०) अपने बायें हाथ की तुलना में दायें हाथ से अधिक सक्रिय था (हाल के दैहिकीय प्रयोगों से पता चला है कि वानरों की कुछ किस्में दायें हाथ का अधिक उपयोग करती हैं)।

पिथिकेंथ्रोपस, जिसके अस्तित्व की डार्विन के सिद्धांत द्वारा भविष्यवाणी की गई थी, की खोज मानव विकास के बारे में वैज्ञानिक विचारों में एक नये युग की द्योतक थी। इसके बावजूद कि इस खोज को हुए अस्सी साल से अधिक हो चुके हैं, यह आज भी सजीवतम वैज्ञानिक दिलचस्पी रखती है।



(ए० दुबुआ द्वारा खोज, १८९१, पुनर्निर्माण)

पिथिकेंथ्रोपस कपाल-तोरण (चित्र ३१) डच वैज्ञानिक एजेन दुबुआ ने १८९१ में जावा में येनगावां नदी के तट पर त्रिनिल नामक गांव के पास खोजा था। यह पांच लाख साल से अधिक पहले बने निक्षेपों में १५ मीटर की गहराई पर पड़ा हुआ था। खोपड़ी की समूची आकृति और उसके साथ-साथ ढलवां माथा और ठोस भ्रू-कटक, ललाटास्थि की बड़ी संकराई, आंखों से पीछे की तरफ खोपड़ी का संकरा होना, चपटा सिर और खोपड़ी के पिछले प्रदेश में उसकी सबसे अधिक चौड़ाई – यह सब दिखाता था कि मनु-ष्याभ प्राणी में अनेक वानर लक्षण थे।

तथापि कपाल के बड़े आयतन (९०० घन सेंटीमीटर के लगभग) के दृष्टिगत उसका मस्तिष्क गोरिल्ला से डेढ़ गुना बड़ा था; इससे विज्ञान इस वानरसम प्राणी को एक आदिम मानव मानने को प्रेरित हुए। यह मत १८९२ में उसी गहराई पर और खोपड़ी से कोई १५ मीटर की दूरी पर दुबुआ द्वारा खोजी जांघ से और पुष्ट हुआ; आकृति और बनावट में यह आधुनिक मानव की जांघ से अधिक भिन्न नहीं है।

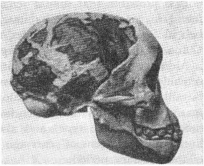
दुबुम्रा का अपने खोजे प्राणी को "पिथिकेंथ्रोपस इरेक्टस" अर्थात "खड़ा कपि-मानव" नाम देना ठीक ही था। दुबुम्रा इस प्राणी को कपि और मानव के बीच का एक अंतर्वर्ती प्रकार मानते थे। बाद में चार खोपड़ियों और पांच जांघों के अस्थि-खंडों की खोज ने दुबुम्रा की धारणा की पुष्टि की।

४. मानवाभ वानर — प्राचीनतम मानव के पूर्वज

विद्वानों का मत है कि प्राचीनतम मानव के पूर्वज बड़े मानवाभ वानर थे, जिनके पास ख़ासे आयतन का मस्तिष्क था। वे उष्ण (अथवा उपोष्ण) घास-स्थलियों में ज़मीन पर रहा करते थे। वे दो टांगों पर कमोबेश सीधे चला करते थे।

यह मत ला़मार्क द्वारा व्यक्त किया और डार्विन द्वारा सिद्धांततः प्रमाणित किया गया था; हमारे समय में एक फ़ासिल वानर — आस्ट्रेलोपिथिकस — की खोज द्वारा इसकी शानदार पुष्टि हुई है।

१९२४ में दक्षिण अफ़्रीका में कालाहारी मरुस्थल के दक्षिण-पूर्वी सिरे पर टाउंग रेलवे स्टेशन के निकट एक ३–५ साल के मानवाभ वानर की अति प्राचीन खोपड़ी मिली थी (चित्र ३२)। खोपड़ी का विवरण रेमंड डार्ट[19] ने दिया था और इस वानर के बारे में विद्वानों के अलग-अलग मत थे। कुछ विद्वान उसे युवा चिंपांज़ी मानते थे, कुछ शिशु गोरिल्ला, तो कुछ और उसे इन अफ़्रीकी वानरों से संबंधित मानवाभ वानर की एक विलुप्त जाति का मानते थे।



चित्र ३२. शिशु आस्ट्रेलोपिथिकस का कपाल (अफ़्रीका)

तथापि डार्ट ने अनेक ऐसे लक्षणों की ओर इंगित किया, जो प्राचीनतम मानव की खोपड़ी के सदृश थे। कम ढलवां माथा और वानर की अपेक्षा कम विकसित मुख-प्रदेश इन लक्षणों

में थे; पास-पास दांत, अल्पविकसित भेदक दांत और चर्वणकों की पेषण सतह पर दंताग्र और खांचे भी मानव दांत की बनावट के अनुरूप हैं। इन विशिष्टताओं के आधार पर डार्ट ने आस्ट्रेलोपिथिकस को मनुष्य का प्रत्यक्ष पूर्वज माना।

कुछ समय बाद एक और खोपड़ी पहली खोज के स्थान के पास ही, श्तेर्कफ़ोंताइन में, मिली, जो प्रत्यक्षतः एक वयस्क आस्ट्रेलोपिथिकस की थी। इस खोपड़ी में घोड़े की नाल के आकार के जबड़े में समान दांत हैं। प्रिटोरिया के पास क्रूगेर्सडोर्प में आस्ट्रेलोपिथिकस से संबंधित एक वयस्क वानर की एक और खोपड़ी खोजी गई और उसका विवरण दिया गया। इसी इलाक़े में दांतों, जबड़ों, खोपड़ियों तथा अन्य अस्थ्यावशेषों की कई और दिलचस्प खोजें की गई हैं, जो सभी इसी प्रकार के वानरों के अवशेष थे।[20]

दक्षिण अफ़्रीकी खोजें दिखाती हैं कि ५००–६०० घन सेंटीमीटर आयतन के मस्तिष्कवाले, ज़मीन पर रहनेवाले द्विपाद मानवाभ वानर चतुर्थ कल्प के केवल पहले पांच लाख वर्षों में ही नहीं, बल्कि तृतीयक कल्प के अंत में भी अस्तित्वमान थे। वे पौधों, मूल-कंदों और अनाजों का आहार करते थे और विभिन्न छोटे तथा मंझोले आकार के पशुओं का शिकार भी करते थे और काफ़ी हद तक मांस का आहार के रूप में उपयोग करते थे। यह संभव है कि कुछ वानर अपने को मिलनेवाले डंडों और पत्थरों का भी इस्तेमाल करते थे।

यह संभव है कि ज़मीन पर रहनेवाले द्विपादों के इसी प्रकार के अवशेष मनुष्य के मूल निवास स्थान में भी मिलेंगे, जो हमारी राय में, दक्षिणी यूरोप और एशिया की एक चौड़ी पट्टी है, जिसमें मलाया और हिंदचीन के प्रदेश सम्मिलित हैं और जो संभवतः उत्तर-पूर्वी अफ़्रीका के एक भाग तक फैली हुई है।[21]

यद्यपि एशियाई आस्ट्रेलोपिथिकस अभी तक नहीं मिल पाया है, दिल्ली के लगभग तीन सौ किलोमीटर उत्तर में, शिवालिक पहाड़ियों में कोई नब्बे साल पहले फ़ासिल वानरों के अवशेष खोजे गये थे। तब से उस इलाक़े में निम्न कोटि के लघुपुच्छ कपियों (macaque) के और मानवाभ वानरों के, जो लाखों साल पहले तृतीयक कल्प के मध्यनूतन (Miocene) अथवा अतिनूतन (Pliocene) युगों में रहा करते थे, कई दांत तथा जबड़े मिल चुके हैं।

मानवाभ वानरों के, विशेषकर ड्रियोपिथिकस और रामापिथिकस, जो चिंपांज़ी जितने बड़े पशु थे, अस्थ्यावशेष अत्यधिक रुचि के हैं। ड्रियोपिथिकसों में से एक अपनी दाढ़ के आकार (मनुष्य की दाढ़ों से आकार में लगभग दुगुनी) के दृष्टिगत लगभग गोरिल्ला के बराबर हो रहा होगा।

सभी शिवालिकी वानरों में रामापिथिकस ही मानव-वंशवृक्ष के निकटतम है। १९३४ और १९३५ में जी० ई० ल्यूइस द्वारा खोजे निचले और ऊपरी जबड़ों के दो टुकड़ों को देखते हुए रामापिथिकस के दांत मनुष्य के समान ही परवर्लायिक जबड़े में थे। सामान्य वानर का जबड़ा इससे भिन्न है। इसमें छेदक दांतों की पंक्ति तथा दाढ़ों की दोनों—बाईं और दाईं—पंक्तियां लैटिन "U" अक्षर के आकार की होती हैं, यानी दाढ़ों की दोनों पंक्तियां लगभग समांतर होती हैं और छेदक दांतों से लगभग समकोण बनाती हैं, जब कि भेदक दांत कोणों पर स्थित होते हैं।

रामापिथिकस का समय अब से एक—दो करोड़ साल पहले उत्तर मध्यनूतन युग और अतिनूतन युग का प्रारंभ है और उसे मनुष्य के उद्गम की लड़ी की एक कड़ी माना जा सकता है। यदि यह जाति पूर्णतः विलुप्त न हो गई होती, तो यह दक्षिण-एशियाई आस्ट्रेलोपिथिकस में, और फिर, पिथिकेंथ्रोपस में विकसित हो सकती थी।

हाल के दशकों में वैज्ञानिकों की दक्षिण-पूर्वी एशिया में हुई फ़ासिल वानरों—जाइगैंटोपिथिकस तथा मेगांथ्रोपस—के अवशेषों की खोज में अत्यधिक दिलचस्पी पैदा हुई है।

जाइगैंटोपिथिकस—शब्दशः महावानर—अपने नाम को पूर्णतः सार्थक करता है—उसकी निचली दाढ़ों के आकार (वे २२ मिलीमीटर लंबी हैं) के हिसाब से उसके शरीर का आकार गोरिल्ला से भी अधिक, या कम से कम उसके बहुत निकट तो था ही। जाइगैंटोपिथिकस की पहली तीन दाढ़ों को जीवाश्मविज्ञानी जी० एच० आर० फ़ॉन केनिग्सवाल्द ने हांगकांग में औषधिविक्रेताओं की दूकानों में ख़रीदे फ़ासिल ओरांग-ऊटानों के १५०० दांतों में से छांटा था (चीन में फ़ासिल पशुओं के पिसे हुए दांतों और हड्डियों का कुछेक दवाओं के निर्माण में उपयोग किया जाता है)। इन दांतों और मनुष्य के दांतों की कुछ बातों में सादृश्य ने एक और विद्वान, फ़्रांस वाइडेनराइख़, को यह परिकल्पना प्रस्तुत करने को प्रेरित किया (१९४३ में) कि जाइगैंटोपिथिकस जावा के पिथिकेंथ्रोपस का पूर्वज था। वाइडेनराइख़ ने मेगांथ्रोपस को मध्यवर्ती कड़ी बताया; इस वानर के जबड़े का तीन दांत लगा एक टुकड़ा संगीरान (जावा) में १९४१ में मिला था।[22]

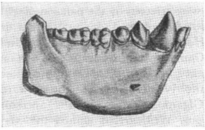
तब से जाइगैंटोपिथिकस के तीन (प्रत्यक्षतः दो नर और एक मादा) अपूर्ण निचले जबड़े और कोई एक हज़ार दांत मिल चुके हैं। इन पशुओं के सभी अवशेष चीन के युन्नान और क्वांसी प्रांतों की गुफाओं से प्राप्त हुए हैं। उनके साथ-साथ

पशुओं के अवशेष भी पाये गये, जिनके मांस का जाइगंटोपिथिकस प्रत्यक्षतः वनस्पति खाद्य के अलावा उपयोग करते थे।

वाइदेनराइख़ की इस परिकल्पना को वैज्ञानिकों की सहमति नहीं मिली कि प्रारंभिक मनुष्य महाकाय पूर्वजों के ह्रास के परिणामस्वरूप विकसित हुआ। जावा में १६४१ में मिले तीन दांतोंवाले निचले जबड़े के टुकड़े को देखते हुए मेगांथ्रोपस का पिथिकेंथ्रोपस से कुछ सादृश्य है।[23] तथापि जाइगंटोपिथिकस निश्चय ही मनुष्य के उद्गम-क्रम के बाहर है।

अब हमें मनुष्य के वंशक्रम को और पीछे ले जाना चाहिए और मनुष्य, चिंपांजी तथा गोरिल्ला के सामान्य पूर्वज – विज्ञान को ड्रियोपिथिकस के नाम से विज्ञात पशु – का अधिक विस्तृत अध्ययन करना चाहिए।

१८५६ में ही एक ख़ासे बड़े मानवाभ वानर, ड्रियोपिथिकस, के निचले जबड़े के अवशेष (चित्र ३३) सां-गोदां (फ़्रांस) में मिले थे। रोमेर के अनुसार (१६६८) यह वानर २–२,५ करोड़ साल पहले रहता था। डार्विन, जिन्हें इस खोज के बारे में मालूम था, मानते थे कि इस प्ररूप के वानर मनुष्य और अफ़्रीकी मानवाभ वानरों – गोरिल्ला तथा चिंपांजी – के सामान्य पूर्वज हो सकते थे। यह मत तब और भी पुष्ट हुआ, जब कोई एक दर्जन निचले जबड़ों और कई अलग-अलग ड्रियोपिथिकस दंतों का अध्ययन किया गया।



चित्र ३३. ड्रियोपिथिकस का निचला जवड़ा

हाल के दशकों में ड्रियोपिथिकस के समान मानवाभ वानरों के अवशेष यूरोप, दक्षिणी एशिया और उत्तरी अफ़्रीका में तृतीयक कल्प के मध्यनूतन तथा अतिनूतनयुगीन संस्तरों में मिले हैं।[24]

ड्रियोपिथिकस तथा मनुष्य का संबंध इस फ़ासिल वानर तथा फ़ासिल मानव के जबड़ों तथा दांतों की बनावट से स्थापित होता है। ड्रियोपिथिकस के निचले चर्वणकों की पेषण सतहों पर दंताग्रों के आपेक्षिक आकारों तथा दंताग्रों के बीच खांचों के विन्यास से इसकी पुष्टि होती है; यह विन्यास लैटिन "Y" अक्षर की आकृति का है और आज के लोगों तक में पाया जाता है। तथापि ड्रियोपिथिकस

के चर्वणकों की दोनों क़तारें लगभग समांतर हैं, भेदक दांत अन्य दांतों से लंबे हैं और जब दांत बंद होते हैं, तब ऊपरी भेदक दांत निचले भेदकों और अग्रचर्वणकों के बीच की जगहों में ठीक बैठ जाते हैं; निचले भेदक दांत ऊपरी क़तार के भेदकों और छेदक दांतों के बीच बैठ जाते हैं।

भेदक दांतों का यह विकास मानवाभ वानरों तथा अन्य वानरों के लिए लाक्षणिक है। विकास की इस अवस्था से मनुष्य ने अपने भेदकों की लंबी जड़ें प्राप्त की हैं, जिनका छोटे सिरों के साथ ज़रा भी अनुपात नहीं है।

तृतीयक कल्प के उत्तरार्ध में रहनेवाले मानवाभ वानरों की लगभग दो दर्जन जातियां विज्ञान को ज्ञात हैं। सोवियत संघ में एक फ़ासिल मानवाभ वानर के अवशेष १९३९ में उदाब्नो (जार्जिया) में ये० ग० गाबाश्वीली तथा न० ओ० बूर्चाक-अब्रामोविच द्वारा खोजे गये थे; फ़ासिल वानर की इस नई जाति को उदाब्नोपिथिकस का नाम दिया गया।[25]

ओरिओपिथिकस तथा जिंजेंथ्रोपस नामक फ़ासिल वानरों के अवशेषों की खोजें खासी दिलचस्पी की हैं। इनमें से प्रथम विज्ञान को टुस्कनी (इटली) में खोजे पृथक दांतों से १८७२ से ज्ञात है। उसी जगह १९५८ में एक लगभग संपूर्ण कंकाल की विरल खोज हुई। चौड़े कूल्हे को देखते हुए लगता है कि ओरिओपिथिकस दो टांगों पर चलता था। स्विस जीवाश्मविज्ञानी योहान्न ह्यूर्सेलर ओरिओपिथिकस को एक मानवाभ वानर, प्रारंभिक अति नूतनयुग में रहनेवाले मनुष्य के पूर्वजों में एक, मानते हैं।

पूर्वी अफ़्रीका में अभी तक अज्ञात एक मानवाभ वानर की अपूर्ण खोपड़ी की खोज (१९५९) से और भी अधिक दिलचस्पी पैदा हुई। खोज प्रमुख अंग्रेज़ विद्वानों, मेरी तथा लुई लीके द्वारा की गई थी, जो टंगान्यीका के पहाड़ों में जीवाश्मिकीय उत्खनन कर रहे थे। खोपड़ी के टुकड़े कई मीटर की गहराई पर थे और उनके साथ कुछ बहुत ही भोंडे पाषाण उपकरण भी थे। लीके दंपति का मत था कि ये उपकरण उस मानवाभ वानर द्वारा बनाये गये थे, जिसे उन्होंने पूर्वी अफ़्रीका के प्राचीन अरबी नाम, ज़िंज, से ज़िंजेंथ्रोपस का नाम दिया। तथापि सोवियत विद्वान (य० प० याकीमोव, १९६०) इस राय से मतभेद रखते हैं। बाद में लीके को इससे भी पुराने प्रीज़िंजेंथ्रोपस के अवशेष मिले। लीके ने उसे "होमो हैबिलिस", यानी "मानववत" कहा। यह १८.५ लाख साल पहले रहता था। इसके निकट पत्थर के भोंडे "औज़ार" भी खोजे गये। माना जाता है कि होमो हैबिलिस उच्चविकसित आस्ट्रेलोपिथिकसों में एक था।[26]

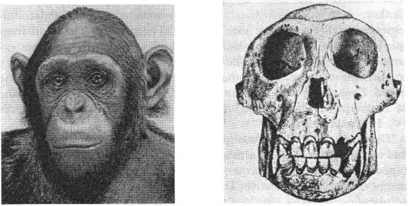
तृतीयक कल्प के अंत में निस्संदेह पृथ्वी पर इस प्रकार के वानरों की कितनी ही और जातियां भी थीं, यद्यपि अतिविकसित द्विपाद वानर की केवल एक जाति ही मनुष्य की पूर्वज बन सकी। यह चार्ल्स डार्विन द्वारा स्वीकृत और अनेक आधुनिक विद्वानों द्वारा समर्थित एकमूलवाद का सिद्धांत है।

डार्विन की पुस्तकों के आने के पहले मानवजाति की एकता को अद्वंद्वात्मक दृष्टि से, एक अकेले जोड़े से मनुष्य के विकास के रूप में देखा जाता था। एकमूलवाद का आधुनिक सिद्धांत मनुष्य को मानवाभ वानरों की एक जाति से उत्पन्न मानता है।[27]

बहुमूलवाद के विपरीत सिद्धांत के समर्थक महाप्रजातियों की आनुवंशिक लक्षण-समष्टि के स्थायित्व का अतिमूल्यांकन करते हैं और मानते हैं कि प्रजातियां वानरों की विभिन्न जातियों से एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में विकसित हुईं। ये विद्वान यह दावा करने की हद तक चले गये हैं कि नीग्रोसम-ग्रास्ट्रेलाभ प्रजाति तथा गोरिल्ला का सामान्य पूर्वज था, और यह कि मंगोलाभ प्रजाति और ओरांग-ऊटान तथा यूरोपाभ प्रजाति और चिंपांज़ी भी इसी प्रकार संबंधित हैं। मानवजाति की सभी प्रजातियों की अद्भुत शारीरिक तथा दैहिकीय समानता जैसे तथ्यों को सामने लाने पर बहुमूलवादियों की दीवार ढह जाती है। सूक्ष्मतम विवरणों में भी यह समानता सच्ची है और उसकी विभिन्न पूर्वजों से विकास के दौरान आई समरूपता द्वारा व्याख्या करना संभव नहीं है।

५. मनुष्य की प्रजातीय विशिष्टताएं और मानवाभ वानर की संरचना का एक प्ररूप

इस बात को ज्यादा अच्छी तरह दिखाने के लिए कि "ऊंची" और "नीची" प्रजातियों का सिद्धांत कितना बेबुनियाद है, हम प्रारंभ आधुनिक मानव-प्रजातियों के अधिक महत्वपूर्ण विशिष्ट संरचनात्मक लक्षणों की चिंपांज़ी के लक्षणों के साथ तुलना करके करेंगे, जो गोरिल्ला के साथ पशु-जगत में मनुष्य का निकटतम संबंधी है। चिंपांज़ी के अनेक प्ररूपों में मनुष्य के साथ सर्वाधिक संरचनात्मक समानता रखनेवाला कांगो नदी की मुख्य धारा के दक्षिण के जंगलों का निवासी बोना बोनोबो चिंपांज़ी है, जो १९२९ में पहली बार खोजा गया था।



चित्र ३४. चिंपांज़ी का चेहरा तथा कपाल

कई विद्वानों का मत है कि चिंपांज़ी का चेहरा (चित्र ३४) ऐसा है, जो संभवतः मध्यनूतन युग के फ़ासिल मानवाभ वानर, ड्रायोपिथिकस के बहुत समान है, जिसे डार्विन मनुष्य के निकटतम पूर्वजों में एक मानते थे।

चिंपांज़ी का माथा ख़ासा ढलवां होता है, जबकि मनुष्य का माथा कमोबेश सीधा होता है। मनुष्य की सभी प्रजातियों के प्रतिनिधियों के माथे की त्वचा रोम-विहीन होती है और भौंहें बहुत स्पष्ट होती हैं। आधुनिक मनुष्य के चिंपांज़ी की तरह आंखों और नासासेतु के ऊपर सतत कटक नहीं होता। भ्रू-कटक निएंडरथल मानव की विशेषता है और उसे वानरों के सदृश बना देता है।

चिंपांज़ी की नाक बहुत छोटी, संकरी और नीचे सेतुवाली होती है; नासा-कंकाल नरम होता है, जिसमें थोड़ी ही उपास्थि होती है। इसके विपरित आदमी के सुविकसित नाक होती है और उसका उपास्थिल कंकाल कई भागों (लगभग एक दर्जन) का बना होता है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण वह दृढ़ चौकोर उपास्थि है, जो नासाद्वारों के बीच के परदे – नासा-पट – का निर्माण करती है। नाक की उपास्थियां नाक, जबड़ों की तथा अन्य अस्थियों के साथ मनुष्य की नाक तथा उसके नयनों को रूप देती हैं।

चिंपांज़ी के होंठों के अंतर्वर्ती लाल किनारे नहीं होते, जो मात्र मनुष्य की ही विशेषता है। मंगोलाभों तथा यूरोपाभों में होंठों का लाल भाग साधारणतः

४°

मध्यम या अल्प विकसित होता है, किंतु नीग्रोसमों में यह अत्यंत विकसित होता है, जो होंठों को फूला हुआ रूप प्रदान करता है। हम नहीं जानते कि निएंडरथलों में होंठों पर यह अंतर्वर्ती लाल भाग किस हद तक विकसित हुआ था, किंतु हम विश्वास कर सकते हैं कि प्राचीनतम मनुष्यों में यह हद से हद बहुत पतला ही था।

होंठों का त्वचीय भाग मनुष्य की सभी प्रजातियों में और चिंपांज़ी में सुविकसित होता है। मनुष्य के होंठों का एक जटिल पेशीसमूह होता है, जो सभी प्रजातियों के लोगों के लाक्षणिक अभिव्यक्ति के ज़बरदस्त वैभिन्य को संभव बनाता है। आदमी तथा चिंपांज़ी, दोनों ही में होंठों के त्वचीय भाग का सशक्त विकास ही अत्यंत भिन्न-भिन्न प्रजातियों के प्रतिनिधियों और चिंपांज़ी में मुखाभिव्यक्ति की अद्भुत समानता का कारण है। हमें यहां यह बता देना चाहिए कि चिंपांज़ी के ऊपरी होंठ पर वह ऊर्ध्वस्थ खांचा नहीं होता, जो सभी मानव-प्रजातियों की सामान्य विशेषता है।

सभी आधुनिक मनुष्यों का चिबुक प्रदेश आगे निकला रहता है और ढालू होकर पीछे की तरफ़ नहीं जाता, जैसा कि चिंपांज़ी और आधुनिक मानव के ख़ासे निकट पूर्वज, निएंडरथल के मामले में है। फिर भी चिबुक के विकास में काफी विभिन्नताएं पाई जाती हैं: कुछ नीग्रोसमों-आस्ट्रेलाभों की ठोढ़ी अल्पविकसित होती है, जबकि औरों का मंगोलाभों तथा यूरोपाभों की तरह औसत होता है।

इन सभी विभिन्नताओं में से कोई भी कुछेक सीमाओं के बाहर नहीं जाती, जिससे किसी भी प्रजाति को चिंपांज़ी के अधिक निकट या दूर का नहीं माना जा सकता।

ठोढ़ी, गालों और ऊपरी होंठ का वह रोम, जो अधिकतर यूरोपाभों तथा आस्ट्रेलाभों में विकसित होता है, कुछ मानवाभ वानरों, मिसाल के लिए, ओरांग-ऊटान या गोरिल्ला, के चेहरे के रोम से मिलता-जुलता है। मंगोलाभों और नीग्रोसमों के चेहरे पर बहुत कम रोम होता है। किसी भी मानव के चेहरे पर वे संवेदी बाल नहीं होते, जिनके मानवाभ वानरों के दो या तीन जोड़े होते हैं और जो अन्य स्तनी प्राणियों के "गलमुच्छों" के अनुरूप होते हैं।

अब हमें चिंपांज़ी की खोपड़ी की तरफ़ ध्यान देना चाहिए; मानव-कपाल के साथ तुलना करने के लिए यह सबसे सुविधाजनक है, क्योंकि इसका आनन प्रदेश कपाल से काफी बड़ा नहीं है, जैसा कि अधिक बड़े और विशेषीकृत गोरिल्ला तथा ओरांग-ऊटान के मामले में है। चिंपांज़ी की खोपड़ी की बाह्य बनावट, उसके

कटक, उभार और रुक्षता, इतने विकसित नहीं हैं, जितने कि अन्य बड़े मानवाभ वानरों में; यह अपेक्षाकृत कम विशेषीकरण का प्रमाण है। अनुप्रस्थ पश्चकपाल कटक (occipital ridge) अस्पष्टतः सीमांकित है और पार्श्विकास्थियों के सीवन के साथ अनुदैर्घ्य अग्रपश्च कटक (sagittal ridge), जो नर गोरिल्ला या ओरांग-ऊटान का इतना प्रकृपी लक्षण है, चिंपांज़ी में सर्वथा अविद्यमान है। तथापि उसके गोरिल्ला के समान ही सशक्त भ्रू-कटक है; यह कटक दोनों आंखों को नेत्रगुहाओं और नासासेतु के ऊपर निरंतर चला गया है।

अधिक प्राचीन फ़ासिल मनुष्यों – पिथिकेंथ्रोपस तथा निएंडरथल मानव में भ्रू-कटक प्रबलतापूर्वक विकसित था। आधुनिक मानव की खोपड़ी पर इस कटक के अवशेष भ्रू-चापों तथा माथे की पार्श्वास्थियों पर अवशेषों के रूप में विद्यमान हैं।

विभिन्न प्रजातियों में भ्रू-चापों तथा उनसे संबद्ध अस्थि-विरचनाओं का विकास अलग-अलग सीमा तक है। नीग्रोसमों में विभिन्नताएं बहुत काफ़ी हैं – आस्ट्रेलियाई आदिवासियों में भ्रू-चाप शक्तिशाली हैं, मेलानेशियाइयों में शक्तिशाली या मध्यम, नीग्रो जनों के कुछ समूहों में मध्यम, लेकिन अधिकांश में अल्प। मानववैज्ञानिक प्ररूपों के पोलीनेशियाई समूह में ये मध्यम या अल्प हैं, द्रविड़ों में भी अल्प या मध्यम हैं और वेद्दाहों तथा मलयों में बहुत कम हैं। मंगोलाभों में भ्रू-चाप आम तौर पर कम या मध्यम होते हैं, लेकिन शक्तिशाली भी देखने में आते हैं। यूरोपीयों में इनकी विभिन्नता और भी अधिक है – इतालवियों में बहुत कम से लेकर आरमीनियाइयों और कुछ उत्तर यूरोपीयों में शक्तिशाली तक।

यह संक्षिप्त सर्वेक्षण दिखाता है कि भ्रू-चापों के विकास के कारण किसी भी महाप्रजाति को आदिम के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। चूंकि अधिकांश नीग्रोसम प्ररूपों में भ्रू-चाप बहुत क्षीणता से अभिव्यक्त होते हैं, इसलिए नसलवादी अपने इस दावे को सिद्ध करने के लिए उसके विकास के आंकड़ों का उपयोग करने में असमर्थ हैं कि नीग्रोसम प्रजाति यूरोपाभ प्रजाति से निम्न श्रेणी की है। साधारणतः वर्तमान लोगों में जो भारी भ्रू-चाप मिलते हैं, वे – ढलवां माथे के साथ होने पर भी – निएंडरथलों के भ्रू-कटकों से आमूलतः भिन्न हैं और अल्पविकास की ओर इंगित नहीं करते।

खोपड़ी की बनावट का नसलवादियों ने अकसर किसी प्रजाति की शारीरिक रचना की अवस्था को निर्धारित करने के साधन के रूप में उपयोग किया है। मानव शरीर के इस भाग का मानवविज्ञानियों ने बहुत विस्तार से अध्ययन किया है, इसलिए नसलवादियों के निराधार दावों का खंडन करना कठिन नहीं है।

कपाल के लक्षण मस्तिष्क को उसके पार्श्विक, पश्चकपाल तथा ललाट प्रदेशों में जटिल संरचना के कारण हैं। ललाटास्थि विकास के दृष्टिकोण से विशेष दिलचस्पी की है। प्रारंभिक मनुष्य का माथा बहुत ढलवां था, आधुनिक मनुष्य का कमोबेश सीधा है।

इसलिए यह प्रतीत होगा कि माथा जिस कोण पर झुकता है, वह यह दिखा सकता है कि किसी प्रजाति का संगठन कितना उच्च है। तथापि, यह दिखाया गया है कि आस्ट्रेलियाई आदिवासियों में माथे का औसत कोण ६०.४° है और एस्कीमो लोगों का औसत कोण ५६.५° है, और इसलिए आस्ट्रेलाभ और मंगोलाभ इस मामले में एक ही स्तर पर हैं। यूरोपाभों में भी इसी प्रकार का छोटा कोण पाया जाता है–मिसाल के लिए, एलसासवासियों (जर्मनी) का कोण ६०° है।

कोण के आकार में बहुत विभिन्नता है। इस मामले में यूरोपाभ महाप्रजाति के प्रतिनिधि मंगोलाभों और आस्ट्रेलाभों से किसी भी तरह श्रेष्ठ नहीं हैं–नीग्रोसमों की तो बात ही क्या, जिनके माथे ढालू नहीं होते और कई मामलों में तो बाहर को ही निकले होते हैं। इसमें हमें यह और जोड़ देना चाहिए कि आधुनिक मानव के माथे के विभिन्न प्रकार मस्तिष्क के समान रूप से सुविकसित ललाट खंडों को ढंकते हैं; ये वे खंड हैं, जो वाणी से और उच्चतम प्रकारों की तंत्रिका सक्रियता से घनिष्टतः संबद्ध हैं।

चिंपांज़ी के ऊपरी जबड़े की अगली सतह सपाट होती है। इस पर, निएंडरथल मानव की तरह, भेदक दांतों के गर्त अविद्यमान हैं, जो सभी आधुनिक लोगों के कपालों के ऊपरी जबड़े के छोटे प्रदेशों पर स्पष्टतः सीमांकित होते हैं, यद्यपि वे मंगोलाभ महाप्रजाति के प्रतिनिधियों में इतनी स्पष्टता के साथ सीमांकित नहीं हैं।

चिंपांज़ी के निचले जबड़े में चिबुक-उभार नहीं है, जो प्रारंभिक मनुष्य के केवल कुछ उत्तरवर्ती प्रकारों–उदाहरण के लिए, हैफ़ा के निकट कार्मेल पर्वत के फ़िलिस्तीनी निएंडरथल–की खोपड़ियों पर अल्पविकसित रूप में पाया जाता है। जैसा कि हम कह चुके हैं, चिबुक-उभार का अस्तित्व आधुनिक मनुष्य के सबसे चारित्रिक लक्षणों में एक है। आस्ट्रेलियाई आदिवासियों का अल्प-विकसित चिबुक चिबुक-प्रदेश की बनावट के कारण इतना नहीं, जितना निकले हुए जबड़ों के कारण है।

चिंपांज़ी के दांत बनावट में किसी भी अन्य मानवाभ वानर की अपेक्षा मानव-प्ररूप के अधिक निकट हैं। पुरानी दुनिया के सभी वानरों की भांति चिंपांज़ी के

भी बत्तीस दांत हैं—ऊपरी और निचले जबड़े की हर तरफ़ दो छेदक, एक भेदक, दो अग्रचर्वणक और तीन चर्वणक। चिंपांजी के भेदक दांत अन्य दांतों से कहीं ऊंचे होते हैं और मुंह बंद होने पर वे विपरीत दांतों के अनुरूप दंतावकाशों में प्रवेश कर जाते हैं; यह सभी वानरों के बारे में सही है। फ़ासिल मानवाभ वानरों—अफ़्रीकी आस्ट्रेलोपिथिकस तथा भारतीय रामापिथिकस—के दांतों की क़तारें अधिक नियमित थीं, जिनसे भेदक दांत थोड़े ही निकले हुए होते थे।

सभी मानव-प्रजातियों के प्रतिनिधियों के बत्तीस निकट-स्थित दांत होते हैं; भेदक दांत औरों के ऊपर नहीं निकलते और उनमें दंतावकाश नहीं होते। आधुनिक मानव के चरम चर्वणक ("अक़लदाढ़") सामान्यतः अन्यों से कम विकसित होते हैं और संभव है कि उनमें से एक या दो निकलें ही नहीं; कभी-कभी चारों ही अक़लदाढ़ें अपनी गर्तिकाओं में ही अविकसित पड़ी रहती हैं। कुछ नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ समूहों की अक़लदाढ़ें पूरी तरह से विकसित होती हैं; यह जबड़े की अधिक लंबाई के कारण है।

मनुष्य के दांत तथा जबड़े उसके पूर्वगामियों के मुक़ाबले कमज़ोर हो गये हैं, किंतु उसके कपाल का असाधारण विकास हुआ है। यह लक्षण मनुष्य के असाधारणतः बड़े मस्तिष्क से संबद्ध है, यह वह अंग है, जो उसका, किसी भी अन्य अंग के मुक़ाबले अधिक, मानवाभ वानरों से विभेद करता है।

चिंपांजी के मस्तिष्क में ऐसे लक्षण हैं, जो उसे बहुत प्रकट रूप में मनुष्य के मस्तिष्क से संबद्ध करते हैं, जैसा कि प्राइमेटों (primates) का अध्ययन करनेवाला हर वैज्ञानिक अच्छी तरह से जानता है।[23]

तथापि, आधुनिक मनुष्य के पास ऐसा मस्तिष्क है, जो चिंपांजी के मस्तिष्क से कई गुना बड़ा है; औसत मानव-मस्तिष्क १२०० से १६०० घन सेंटीमीटर तक का, तो चिंपांजी का ३५० से ५०० घन सेंटीमीटर तक का होता है। सबसे बड़े मस्तिष्क बुर्यात लोगों में पाये जाते हैं। अगर "श्वेत" प्रजाति "पीली" तथा "काली" प्रजातियों से ऊंची प्रजाति है, तो यह क्यों है कि सबसे बड़ा मस्तिष्क यूरोपाभ महाप्रजाति के प्रतिनिधियों में नहीं, बल्कि बुर्यातों में पाया जाता है, जो मंगोलाभ ("पीली") महाप्रजाति के हैं?

चिंपांजी मस्तिष्क के कर्णक (gyrus) और परिखाएं (sulcus) एक निश्चित प्रतिरूप बनाते हैं, जो मनुष्य के अधिक अच्छी तरह विकसित मस्तिष्क के समान हैं। चिंपांजी मस्तिष्क के प्रमस्तिष्क गोलार्ध का केंद्रीय खंड सिल्वियन विदर (Sylvian fissure) में पूर्णतः निमज्जित नहीं होता; इसका कारण

प्रांतस्था के ललाट, पार्श्विका तथा शंख खंडों के प्रतिवेशी क्षेत्रों का न्यून विकास है, जो मनुष्य में केन्द्रीय खंड को पूरी तरह से ग्राच्छादित कर लेते हैं। पार्श्विक तथा पश्चकपाल खंडों के बीच का वानर विदर चिंपांजी में सुविकसित होता है। स० म० ब्लिंकोव के अनुसार (१९५५)[29] यह ग्राधुनिक मनुष्यों में अर्धचंद्राकार परिखा (lunate sulcus) के अनुरूप होता है।

चिंपांजी मस्तिष्क के पश्चकपाल खंड के भीतरी पहलू पर शूक परिखा (calcarine sulcus) होती है, जो सभी प्रजातियों के मनुष्यों के साथ सभी कपियों की एक सामान्य विशेषता है; दृष्टि क्षेत्र इसी परिखा के ग्रासपास स्थित है।

अपने बहुसंख्य कर्णकों तथा परिखाग्रों के कारण मानव मस्तिष्क चिंपांजी या निएंडरथल मानव तक के मस्तिष्क के मुक़ाबले कहीं अधिक जटिल है, यद्यपि निएंडरथल मानव का मस्तिष्क बहुत बड़ा है।

सोवियत विज्ञानकर्मियों द्वारा, मिसाल के लिए मास्को के मस्तिष्क संस्थान तथा मास्को विश्वविद्यालय के मानवविज्ञान संस्थान की मस्तिष्क-विकास प्रयोगशाला में, किया गया काम दिखाता है कि विभिन्न प्रजातियों के लोगों में कर्णकों ग्रौर परिखाग्रों की ग्राकृतियों में ग्रौर प्रांतस्था की सूक्ष्म ग्रांतरिक संरचना में ग्रंतर नसलवादियों के दावों के विपरीत लगभग ग्रगोचर ग्रौर कम सार्थकता के हैं। किसी व्यक्ति को उसकी खोपड़ी की ग्राकृति के ग्राधार पर किसी प्रजाति का कहा जा सकता है, किंतु विशेषज्ञ, मानवविज्ञानी ग्रौर शारीरविज्ञानी भी मनुष्य के मस्तिष्क से उसकी प्रजाति नहीं निर्धारित कर सकते।

प्रसिद्ध रूसी शारीरविज्ञानी व्लादीमिर बेत्स (१८३४–१८९४) ने, जो प्रमस्तिष्क प्रांतस्था का कोशिका-संरचनात्मक (cyto-architectonic) अध्ययन करनेवाले पहले व्यक्ति थे, १८७० में पीटर्सबर्ग चिकित्सक समाज में दिये एक भाषण में कहा था कि उनके अनुसंधानों ने दिखाया है कि अफ़्रीकी नीग्रो लोगों के मस्तिष्क में कर्णकों की व्यवस्था सिद्धांततः वही है, जो यूरोपीयों के मस्तिष्कों में है।

हाथों की हथेलियों ग्रौर पैरों के तलवों की ग्रंकुरक तथा ग्राकुंचनी रेखाग्रों, बहिर्कर्ण की ग्राकृति, सिर, धड़ तथा हाथ-पैरों पर बालों के वितरण तथा वर्धन दिशा पर भी लगभग यही बात लागू होती है। ये ऐसे लक्षण हैं, जो समरूपता के कारण नहीं हो सकते।

यदि हम वर्तमान प्रजातियों का उनकी दैहिक संरचना के ग्रानुवंशिक वानर लक्षणों के दृष्टिकोण से अध्ययन करें, तो हम पाते हैं कि कोई भी प्रजाति अन्य

प्रजातियों के मुक़ाबले इन्हें इतनी अधिक सीमा तक नहीं दर्शाती कि उसे अधिक पुरातन माना जा सके।

उदाहरण के लिए नीग्रो लोगों के नयने बहुत चौड़े होते हैं, लेकिन ऊपरी जवड़े पर के भेदक दांतों के गर्त्त सुस्पष्ट हैं, होंठ मोटे हैं, सिर के बाल कड़े कुंडलों में हैं, शरीर रोम लगभग बिलकुल भी नहीं है और धड़ की तुलना में टांगें लंबी हैं। नीग्रो की नाक की आकृति चिंपांजी की नाक की आकृति के "निकट" हो सकती है, किंतु अन्य लक्षणों में यह पतली संकरी नाकवाले यूरोपीयों के मुक़ाबले उस पशु से अधिक "दूर" है, -क्योंकि उनके भेदक दांतों के गर्त्त अधिक उथले हैं, उनके होंठ पतले और बाल लहरीले हैं, उनके मुंह और शरीर पर काफ़ी बाल हैं और उनकी टांगें छोटी हैं।

इस प्रसंग में जर्मन मानवविज्ञानी ए० वाइस्सबाख़ द्वारा पिछली सदी के सातवें दशक में "नोवारा" नामक जहाज़ पर संसार की परिक्रमा के दौरान संग्रहीत तथ्यसामग्री से निकाले निष्कर्ष का उल्लेख करना उचित होगा। उन्होंने लिखा था कि मानव और कपि का सादृश्य किसी एक ही जाति में संकेंद्रित नहीं है; सभी लोग, कमोबेश मात्रा में, इस आनुवंशिक संबंध का प्रमाण रखते हैं; यूरोपीय लोग वानरों से इस संबंध के अपवाद होने का दावा नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में, यूरोपीयों की शारीरिक बनावट ऐसी है, जो अन्य लोगों से किसी भी तरह "श्रेष्ठ" नहीं है।

६.५ मानव शरीर की संरचना के मुख्य लक्षण: हाथ, पैर, मस्तिष्क

अभी तक हमने अधिकतर ऐसी विशेषताओं को परखा है, जो यद्यपि मानव-प्रजातियों के विशिष्ट लक्षणों के नाते महत्वपूर्ण हैं, फिर भी यह निर्धारित करने में अधिक महत्व की नहीं हैं कि मनुष्य वानरों से क्योंकर भिन्न है।

अब हम मानव शरीर के उन अंगों की परीक्षा करेंगे, जिन्होंने मनुष्य के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भाग लिया है। ये अंग हैं: मस्तिष्क, जो श्रम और वाणी के प्रभाव के अंतर्गत विकसित हुआ; हाथ, जो श्रम के अंग में विकसित हुआ; पैर, जिसने ऊर्ध्व चलन के प्रभाव के अंतर्गत रूप ग्रहण किया।

एंगेल्स के अनुसार वानर के आधुनिक मानव में विकास को निर्धारित करनेवाला

बुनियादी कारक श्रम था: "पहले श्रम, उसके बाद और उसके साथ ही वाणी–यही वे दो सर्वावश्यक उद्दीपन थे, जिनके प्रभाव से वानर का मस्तिष्क धीरे-धीरे मानव के मस्तिष्क में बदल गया, जो अपनी समस्त समानता के बावजूद कहीं अधिक बड़ा और अधिक परिनिष्पन्न है।"[30]

हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि सभी मानव-प्रजातियों के प्रतिनिधियों का मस्तिष्क श्रम के लिए समान रूप से अनुकूलित है और ललाट, शंख तथा पार्श्विका खंडों के वे क्षेत्र, जिन पर वाणी निर्भर करती है, उसी सीमा तक विकसित हैं।

अकादमीशियन इवान पावलोव के सिद्धांत के अनुसार सुस्पष्ट वाक् में प्रयुक्त शब्द संकेतों की दूसरी प्रणाली के एक भाग का निर्माण करते हैं, जो केवल मनुष्य के ही पास है। मनुष्य ने अपने सुदूर पूर्वजों से परिवेशी यथार्थ के संकेतों की जिस पहली प्रणाली को प्राप्त किया है, वह एक ऐसी चीज़ है, जो उसे सभी उच्चतर पशुओं के साथ सम्मिलित रूप में प्राप्त है, यद्यपि यह वाणी और चेतना के विकास के साथ बदल गई है।

प्रमस्तिष्क प्रांतस्था का वह क्षेत्र, जो उंगलियों की गतियों को नियंत्रित करता है, बहुत महत्व का है। यह अग्र मध्यवर्ती कर्णक के निचले भाग में, वाक् प्रेरक क्षेत्र के निकट स्थित है; यह क्षेत्र सभी प्रजातियों में समान रूप से विस्तृत है, यह अत्यधिक विकसित है और प्रत्येक उंगली के लिए पृथक "केंद्रों" में विभाजित है।

चिंपांज़ी की प्रमस्तिष्क प्रांतस्था का वह क्षेत्र, जो उंगलियों की गति से संबद्ध है, इतना अधिक विकसित नहीं है। चिंपांज़ी तथा अन्य वानरों के हाथ की अलग-अलग उंगलियां मनुष्य की उंगलियों की भांति एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में और बड़ी अचूकता के साथ काम नहीं कर सकतीं।[31] इस क्रियात्मक अंतर को समझने के लिए हमें मनुष्य के और चिंपांज़ी के हाथ की परीक्षा करनी होगी।

चिंपांज़ी का हाथ एक विशेषीकृत परिग्रहण अंग है, जो तर्जनी से लेकर कनिष्ठिका तक सभी उंगलियों के लंबाई में सशक्त विकास की दृष्टि से विलक्षण है। वानर उनका पेड़ों में होकर जाते समय डाल से मज़बूती के साथ लटकने के लिए कांटे की तरह उपयोग कर सकता है। संपूर्ण हथेली और उंगलियों के निचले भाग प्रचुर मात्रा में संवेदी तंत्रिकांतों से युक्त हैं और अंकुरक अथवा परिग्राही रेखाओं से पूर्णतः आच्छादित हैं, जो हाथ को पेड़ की डाल को पकड़ते समय फिसलने से बचाती हैं।

तथापि अंगूठा बहुत ही छोटा, बहुत अल्पविकसित है और पकड़ने में बहुत कम भाग लेता है। अतः हाथ बाहुगमन, अर्थात भुजाओं द्वारा डाल से डाल पर झूलने के लिए निर्दिष्ट एक विशेषीकृत अंग है।

यद्यपि एक कुशल बाहुगामी होने के नाते चिंपांजी के पास एक अत्यंत विशेषीकृत हाथ है, तथापि उसमें और मानव के हाथ में, जो मूलतः एक परिग्रहण अंग ही है, निकट सामीप्य आसानी से नजर आ जाता है। चिंपांजी की तरह मनुष्य के भी चपटे अंगुलि-नख हैं और उसकी हथेली भी चिंपांजी के समान ही अंकुरक तथा आकुंचनी रेखाओं से ढंकी हुई है।

तथापि मनुष्य का अंगूठा अत्यंत सुविकसित है और आसानी से अन्य उंगलियों के उलटे या सामने आ जाता है। यही वह विशेषता है, जो उंगलियों की सुविभेदित गतियों के साथ मनुष्य के हाथ को श्रम के अंग की विशिष्टता प्रदान करती है। मनुष्य के मानवाभ वानर पूर्वज का हाथ बहुत अधिक विशेषीकृत नहीं हुआ था, फिर भी उसने उसे ऐसे कामों में लगने में समर्थ बनाया, जिनमें वस्तुओं को पकड़ना और थामना बहुत महत्वपूर्ण था।

जैसा कि एंगेल्स ने बताया है, मनुष्य का हाथ केवल काम करने का अंग ही नहीं, उसकी उपज भी है। किये गये कार्य के प्रभाव के अंतर्गत यह विकास के दौरान लगातार बदला। हाथ की जो शारीरिक तथा दैहिकीय विशेषताएं उसे कार्य करने योग्य अंग का रूप देती हैं, वे आनुवंशिकता द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रेषित, विकसित और संचित होती गईं।[32]

मनुष्य के हाथ ने उन नये कृत्यों को वशीभूत कर लिया, जो उसे करने थे, किंतु फिर भी उसने वस्तुओं को पकड़ने और चढ़ने में सहायता देने की अपनी मूल क्षमता को, उस क्षमता को क़ायम रखा, जिसे उसने मानवाभ वानरों से प्राप्त किया था।

हाथ की, जो मनुष्य का पशुओं से विभेद करनेवाला सबसे महत्वपूर्ण अंग है, बनावट के लिहाज से कोई भी आधुनिक मानव-प्रजाति दूसरी प्रजातियों से ऊंची या नीची नहीं है।

हाथ सभी सामाजिक कारकों में सबसे शक्तिशाली – सामाजिक श्रम – के प्रभाव के अंतर्गत विकसित हुआ। तथापि अगर मनुष्य के प्रत्यक्ष पूर्वज के हाथ को ज़मीन पर चलन के समय देह को सहायता देने के अपने कृत्य से मुक्त न कर दिया गया होता, तो यह विकास असंभव होता और उसका (और, फलतः, वानर के मानवीकरण का) रास्ता बंद हो गया होता।

चिंपांजी का हाथ सर्वोपरि रूप में पेड़ों पर चढ़ने के लिए एक अनुकूलित अंग है। पैर एक बहुत महत्वपूर्ण गौण कृत्य का निष्पादन करते हैं, विशेषकर पेड़ों में से और जमीन पर मंद गति के समय, और इसलिए उन्होंने अपनी परिग्रहण क्षमता को कायम रखा, जिसमें पैर का अंगूठा अन्य उंगलियों के सामने रहता है, लेकिन वे जमीन पर चारों हाथ-पैर के बल चलते या भागते समय तेज गतियों के भी उपयुक्त हैं (इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सिर्फ चारों उंगलियां ही नहीं, बल्कि अंगूठा भी मजबूत और सुविकसित है)।

पहली नजर में चिंपांजी के पैर और हाथ में बहुत सादृश्य है, क्योंकि अंगूठा अन्य उंगलियों से कुछ दूरी पर स्थित है और उनके सामने आ सकता है। तथापि एड़ी का अस्तित्व यह दिखाता है कि यह हाथ नहीं, पैर है, यद्यपि मूलतः वह डालों को पकड़ने के लिए अनुकूलित है। चपटे नाखूनों के होने की दृष्टि से चिंपांजी का पैर भी मनुष्य के पैर से मिलता-जुलता है।

मनुष्य और चिंपांजी में हाथ और पैरों की उंगलियों के आपेक्षिक आकार में अंतर है। न सिर्फ चिंपांजी के हाथ की तीसरी उंगली ही अन्य सब हस्तांगुलियों में लंबी होती है, बल्कि पैर की तीसरी उंगली भी अन्य पादांगुलियों से लंबी होती है; उसके बाद क्रमानुसार चौथी, दूसरी, पांचवीं और पहली उंगली (अंगूठा) आती हैं। मनुष्य की पादांगुलियों में अंगूठा सबसे लंबा होता है (इसका सूत्र है: १ > २ > ३ > ४ > ५), या विरल मामलों में दूसरी पादांगुली सबसे लंबी होती है (सूत्र: २ > १ > ३ > ४ > ५)। मनुष्य के हाथ की उंगलियां इस क्रम में होती हैं (१=अंगूठा): ३>४>२>५>१, जैसा कि वानरों में होता है, या कुछ मामलों में क्रम ३ > २≧४ > ५ > १ होता है। चिंपांजी के पैर का अंगूठा हाथ के अंगूठे से अतुलनीय रूप में अधिक विकसित होता है।

आदमी के पैर की आंतरिक संरचना चिंपांजी के पैर से और भी अधिक समानता दर्शाती है। मनुष्य के पैर में एक पेशी का अवशेष है, जो मानवाभ वानर में अंगूठे को अन्य उंगलियों के पास ले जाती है। यह पेशी अनुप्रस्थ और तिरछे सिरों की बनी है। मनुष्य में अनुप्रस्थ सिरा बहुत कम हो गया है, लेकिन वानर के पैर में उसका बड़ा क्रियात्मक महत्व है।

मनुष्य के पैर का वानर के पैर से अधिकतम विभेद करनेवाला लक्षण अनुदैर्घ्य चाप है, जो मनुष्य को खड़े होने में और चलन में दृढ़ सहारा प्रदान करता है। मनुष्य की सभी प्रजातियों में यह सुविकसित है, लेकिन चिंपांजी के पैर में यह अविद्यमान है।

अनेक क़बीलों और जातियों के, विशेषकर उष्ण तथा उपोष्ण प्रदेशों में रहनेवाले लोगों के पैरों में अक्सर पकड़ने की क्षमता होती है। ये लोग बचपन से नंगे पैर चलने और ज़मीन से पत्थर और अन्य छोटी-मोटी चीज़ें उठाने के आदी होते हैं और बड़ी दक्षता प्राप्त कर लेते हैं, जो उन्हें अपने पैरों का सिलाई, नाव खेने और अनेक अन्य क्रियाओं में उपयोग करने में समर्थ बना देती है। लंबे अभ्यास के फलस्वरूप अंगूठा अपनी पड़ोसी उंगली से दूर जाने या उसके पास आने की क्षमता प्राप्त कर लेता है; वह ज्यादा आसानी से झुकने भी लगता है। अन्य उंगलियां भी स्वतंत्रता और दक्षता की कुछ मात्रा प्रदर्शित करती हैं।

न० न० मिक्लूखो-मावलाई ने पापुआइयों में इस दक्षता का एक रोचक विवरण दिया था: "मैंने उन्हें अपने पैरों की उंगलियों से विभिन्न वस्तुओं को पकड़ते, उन्हें ज़मीन पर से उठाते, पानी में मछलियां पकड़ते, बड़ी मछलियों को भाले से अलग करते और केले छीलते तक देखा।"[33] यूरोपीय और अन्य लोगों के, जो आदतन जूते – और अक्सर बहुत तंग जूते – पहनते हैं, पैर ऐसे होते हैं, जो उष्ण प्रदेशों में रहनेवाले और आम तौर पर नंगे पैर घूमनेवाले लोगों के पैरों से क्रियात्मक और आकृतिक दृष्टि से भिन्न होते हैं।

फिर भी सभी प्रजातियों के लोगों में पैरों की बनावट और कार्य बहुत समान हैं और विभिन्नताएं, विशेषकर जन्मजात संरचनात्मक विभिन्नताएं, बहुत ही कम हैं।

निएंडरथल मानव का पैर ऊर्ध्व चलन के लिए आधुनिक मनुष्य के पैर जितना सुअनुकूलित नहीं था। यह रीढ़ या मेरुदंड की आकृति के पूर्णतः अनुरूप है, जिसके ग्रैव तथा कटि-वक्र सभी आधुनिक प्रजातियों जितने सुस्पष्ट नहीं थे। कितनी ही बातों में निएंडरथल का मेरुदंड आधुनिक मनुष्य की बनिस्बत चिंपांज़ी तथा किसी अन्य मानवाभ वानर के अधिक समान था।

अब हम संक्षेप में उन तथ्यों का समाहार करेंगे, जो मनुष्य की सभी आधुनिक प्रजातियों की एकता और जीववैज्ञानिक समानता दिखाते हैं।

आधुनिक मनुष्य का मस्तिष्क बड़ा है और उसमें अच्छी तरह विकसित ललाट खंड हैं। इस बात में सभी आधुनिक प्रजातियां सिर्फ़ चिंपांज़ी ही नहीं, बल्कि निएंडरथलों से भी भिन्न हैं, जिनके मस्तिष्क में कहीं अधिक अल्प-विकसित ललाट खंड थे।

चिंपांज़ी के हाथ को उसका छोटा अंगूठा विभिन्नता प्रदान करता है। यूरोपाभ, नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ तथा मंगोलाभ महाप्रजातियों के सभी प्रतिनिधियों में अंगूठा

एवं अच्छी तरह विकसित होता है और सभी में समान रूप से अन्य उंगलियों के सामने आ जाता है।

सभी प्रजातियों के पैर में एक लोचदार चाप होता है, जो उसे सहारे का अंग बना देता है, न कि उन विलुप्त वानरों का परिग्रहण अंग, जो मानव के पूर्वज थे; उनमें पैर का अंगूठा अन्य उंगलियों के सामने आ सकता था और पैर चीज़ों को शायद उतनी ही दक्षता के साथ पकड़ सकता था, जितना कि हाथ।

अतः मनुष्य की सभी आधुनिक प्रजातियां मस्तिष्क, हाथ और पैर जैसे महत्वपूर्ण अंगों की बनावट के मामले में एक ही स्तर पर हैं, ये वे अंग हैं, जिनका उत्तरोत्तर विकास मनुष्य के विकास की लाक्षणिक विशेषता है। अन्य अनेक महत्वपूर्ण लक्षणों की ही भांति इस बात में भी मनुष्य की आधुनिक प्रजातियां अपने निकटस्थ पूर्वज, निएंडरथल मानव, से समान रूप से दूर हैं और मानवाभ वानरों के प्ररूप से तो और भी अधिक दूर हैं।

आधुनिक प्रजातियों की एकता अनेक जीव-रासायनिक लक्षणों में और भी अधिक स्पष्ट है। रुधिर की संरचना में यह विशेषकर प्रत्यक्ष है, जिसे उपयोग में लाई गई अध्ययन की अति सूक्ष्म प्रणालियों के बावजूद किसी विशेष प्रजाति के रुधिर के रूप में पहचान पाना व्यवहारतः असंभव है।

मनुष्य की प्रजातियों की जीववैज्ञानिक समानता का अभिज्ञान नसलवादियों के इस दावे का पूरी तरह से खंडन कर देता है कि नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ प्रजाति, और कुछेक की राय में मंगोलाभ प्रजाति भी, यूरोपाभ प्रजाति के विकास की प्रारंभिक मंजिलें हैं।

अब हमें यह देखना चाहिए कि मनुष्य की विभिन्न प्रजातियां किस तरह उत्पन्न और विकसित हुई।

प्रजातियों का उद्‌गम

१. मनुष्य की प्रजातियां—
ऐतिहासिक विकास का परिणाम

यह संदेह के परे है कि पर्यावरण ने प्रजातियों के विकास को प्रभावित किया है। आदिम मानव के अस्तित्वमान होने के समय यह प्रभाव प्रत्यक्षतः कहीं अधिक था, किंतु आधुनिक प्रजातियों के निर्माण की प्रक्रिया में इसका इतने जोर से अनुभव नहीं किया गया, यद्यपि कुछ लक्षणों, जैसे त्वचा की वर्णयुक्तता, में यह अब भी बहुत स्पष्ट है। प्रत्यक्षतः, प्रजातीय लक्षणों के उदय, निर्माण, क्षय और विलोप तक में सर्वाधिक महत्व जीवन की परिस्थितियों की संपूर्ण समष्टि का ही था। उन विद्वानों के विरुद्ध यही दृष्टिकोण रखा जाना चाहिए, जो प्रजातियों की रचना को अपरिवर्ती जीनों (genes) की उलट-पुलट का परिणाम मानते हैं।

जैसे-जैसे लोग पृथ्वी की सतह पर फैले, उनका भिन्न-भिन्न प्राकृतिक अवस्थाओं से सामना हुआ। यद्यपि प्राकृतिक अवस्थाओं का पशुओं की जातियों तथा उपजातियों पर बहुत ही जबरदस्त प्रभाव पड़ता है, पर वे मनुष्य की प्रजातियों पर इतनी तीव्र क्रिया नहीं कर पाईं, क्योंकि मनुष्य इस माने में पशुओं से गुणात्मक रूप में भिन्न थे कि वे लगातार प्रकृति का उपयोग कर रहे थे और सामूहिक श्रम की प्रक्रिया में उसे रूपांतरित कर रहे थे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्य के विकास के दौरान अनेक प्रजातीय लक्षण अनुकूलन के लक्षण थे, जो सामाजिक कारकों की भूमिका के बढ़ने और प्राकृतिक वरण की भूमिका के धीरे-धीरे कम और फिर लगभग बिलकुल विलुप्त होने के साथ-साथ काफ़ी हद तक जाता रहा।

प्रारंभ में मनुष्य का नये प्रदेशों में प्रसार बहुत अर्थपूर्ण था, क्योंकि लोगों के अनेक समूह लंबे समय तक भिन्न-भिन्न प्राकृतिक अवस्थाओं में, एक-दूसरे से पृथक और अलग-अलग खाद्य खाते हुए रहते थे। बाद में, जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ, प्रजातीय समूहों में संपर्क बढ़ता गया, जिसके परिणामस्वरूप उनका मिश्रण हुआ।

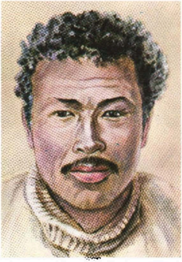
कुछ अधिकारी मानवविज्ञानी मानते हैं कि पार्थक्य और मिश्रण ने प्रारंभिक मानव की प्रजातियों के इतिहास में बहुत काफ़ी अन्योन्य क्रिया की है। जब कोई पृथक समूह संख्या में बढ़ जाता था और नये इलाक़ों में फैलता था, तो वह अकसर अन्य समूहों के संपर्क में आता और उनसे मिश्रित होता था। इस बात ने प्राथमिक विभेदीकरण को कम किया। जैसे-जैसे मानववैज्ञानिक प्ररूपों के समूह मिलते गये, नये मिश्रित अथवा संपर्क समूह स्थायित्व प्राप्त करते गये। ग़ैर-आबाद और दुर्गम इलाक़ों में फैलने के बाद फिर भौगोलिक पार्थक्य आया और, नतीजे के तौर पर, मानववैज्ञानिक प्ररूपों का नया विभेदीकरण हुआ। यह माना जा सकता है कि इस प्रकार की प्रक्रियाओं की कई बार पुनरावृत्ति हुई और वे आधुनिक मनुष्य के विकास के लाखों वर्षों की अवधि तक चलीं, जिसने, जैसे-जैसे उसकी संख्या बढ़ती गई, पहले धीरे-धीरे और फिर तेज़ी से सारे ग़ैर-आबाद इलाक़ों को, नये द्वीपों को भी और आस्ट्रेलिया तथा अमरीका जैसे महाद्वीपों तक को आबाद कर लिया। अंत में मनुष्य ने भूमंडल के सारे धरातल पर कब्जा कर लिया, जिसमें उसकी सबसे नई उपलब्धि अंटार्कटिक महाद्वीप के कुछ भाग हैं।

यद्यपि प्रतिकूल जलवायविक परिस्थितियों और प्राकृतिक रुकावटों (ऊंचे पहाड़ों, अत्यधिक घने जंगलों, निर्जल मरुस्थलों) ने मनुष्य के प्रसार में बाधा डाली, पर उन्होंने उसे रोका नहीं। सामाजिक संगठन, श्रम, पोशाक, औज़ारों, हथियारों, आग और परिवहन साधनों ने उन प्राकृतिक कारकों को निराकृत करने का काम किया, जिनका आम तौर पर पशुओं की किसी भी जाति पर विभेदीकारक प्रभाव पड़ता है। यहां हम इतिहास के दौर में मनुष्य की प्रजातियों के निर्माण और वन्य पशुओं की जातियों अथवा अंतरजातीय उपप्रभागों के विकास के बीच सुस्पष्ट गुणात्मक [अंतर को देख सकते हैं।

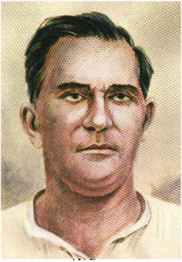
यही वे सब कारक हैं, जो प्रजातियों के] अध्ययन और उनके प्राकृपिक शारीरिक लक्षणों के विश्लेषण के प्रति एक विशेष सर्वांगीण ऐतिहासिक दृष्टिकोण को आवश्यक बनाते हैं। प्रत्येक प्रजाति का विकास निश्चित प्राकृतिक तथा सामाजिक अवस्थाओं में] हुआ, जो मूलभूत रूप में संबद्ध थीं]। इसलिए किसी प्रजाति के निर्माण का इतिहास उसके एक निर्धारित क्षेत्र के भीतर विभिन्न प्राकृतिक तथा सामाजिक अवस्थाओं के सम्मिलित प्रभाव के अंतर्गत उदय और विकास की कहानी है, जिन्होंने संबद्ध प्रजाति को प्रभावित किया और उसके विकास की दिशा को निश्चित किया। इस प्रक्रिया की बदौलत नवोदित शारीरिक लक्षणों ने एक दूसरे के साथ मिलकर नई लक्षण समष्टियां बनाईं।



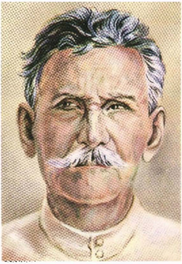
European-Negro



Negro-Chukchi

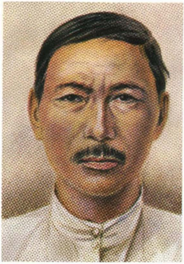


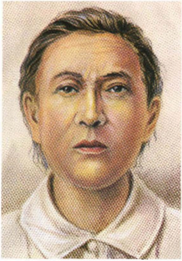
अंग्रेज़-पोलीनेशियाई



डच-मलय

यूरोपाभ, नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ तथा मंगोलाभ प्रजातियों के प्रतिनिधियों में विवाहों





रूसी-बुर्यात

रूसी-बुर्यात





इतालवी-जापानी

स्पेनी-अमरीकी इंडियन

यूरोपाभ तथा मंगोलाभ प्रजातियों में विवाहों की संतानें

प्राकृतिक वरण के साथ प्रसार, पार्थक्य, संख्या में वृद्धि, मानववैज्ञानिक प्ररूपों का मिश्रण और भोजन में परिवर्तन प्राचीन मनुष्यों में प्रजाति-निर्माण की प्रक्रिया में मुख्य कारक थे। विभिन्न संयोगों में प्रकट होते और अपनी तीव्रता में बदलते हुए उन्होंने प्रजातियों और मानववैज्ञानिक प्ररूपों—पहले कतिपय, किंतु बाद में कहीं अधिक बहुसंख्यक, जो अंतर्वर्ती समूहों द्वारा विभिन्न मात्राओं में संबंधित थे—के निर्माण में योगदान किया।

२. भौगोलिक और सामाजिक पार्थक्य

प्रारंभिक पुरापाषाण युग में जनसंख्या कम थी और विभिन्न दिशाओं में विशाल प्रदेशों पर फैल गई थी, जिनकी जलवायविक अवस्थाएं अत्यंत भिन्न-भिन्न थीं और प्राकृतिक बाधाओं का प्राचुर्य था, जो लोगों के बीच संपर्क को रोकती थीं। उस युग में भौगोलिक पार्थक्य का कारक विशेषकर महत्वपूर्ण था।

एक-दूसरे से अलंघ्य पर्वतमालाओं, गहरी तथा चौड़ी नदियों, रेगिस्तानों, आदि द्वारा पृथक्कृत प्रजातीय समूहों के दैहिक विभेदक लक्षणों का विकास प्रकटतः जलवायविक तथा अन्य प्राकृतिक अवस्थाओं से बहुत प्रभावित हुआ था।

यह समझ में आनेवाली बात है कि मनुष्य के इतिहास की प्रारंभिक मंजिलों में, पुरापाषाण युगों में, भौगोलिक पार्थक्य ने कुछ मानववैज्ञानिक प्ररूपों के आनुवंशिक लक्षणों के बदलने में विशेषकर महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसने प्राचीन प्रजातियों के भीतर विभेदीकरण को बढ़ाया।

जीववैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने पर प्रजनन की क्रियाविधि, लिंग कोशिकाओं का परिपक्वन, गर्भाधान, शरीर-रचना की प्रक्रिया और आनुवंशिक लक्षणों का परिवर्तन मनुष्य में भी उच्चतर स्तनी प्राणियों के समान ही है। किंतु लोगों के बीच संबंध[1], मानव समूहों का और समूचे तौर पर मानवजाति का विकास मुख्यतः सामाजिक कारकों द्वारा ही निर्धारित होते हैं। इस परिस्थिति से मनुष्य में आनुवंशिक लक्षणों के परिवर्तन पशुओं की तुलना में अनिवार्यतः भिन्न रूप के हो गये और यही मानव प्रजातियों का पशुओं से एक मुख्य गुणात्मक अन्तर है।

जिस समय आदिम और प्राचीनतम लोग विकसित हो रहे थे, उस समय जिन प्रजातियों ने रूप लिया, वे किसी हद तक पशु-जगत के स्थानीय प्ररूपों से तुलनीय थीं, किंतु समय के साथ यह समानता लगातार कम होती गई। आदिम मनुष्य की प्रजातियों में आधुनिक मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक ऐसे विशिष्ट

5—66

लक्षण थे, जिन्हें शुद्धतः स्थानीय, भौगोलिक अवस्थाओं के प्रभाव के अंतर्गत उपजे हुए माना जा सकता है। इस प्रकार के लक्षण अपने प्रमुखतम रूप में केवल कुछेक मानववैज्ञानिक समूहों में पाये जा सकते हैं, जो या तो निवास-योग्य दुनिया के बाहरी छोरों पर रहते हैं, या पार्थक्य की अवस्थाओं में—मिसाल के लिए, द्वीपों पर, जंगलों में या पहाड़ों में।

मनुष्य के भौगोलिक पार्थक्य के साथ पड़ोसी समूहों के परस्पर-विरोधी हितों, सामान्य भाषा के प्रभाव और उन मुठभेड़ों के कारण, जो समूहों के समान प्रजाति के होने पर भी हो सकती थीं और प्रायः होती रहती थीं, अकसर सामाजिक पार्थक्य भी जुड़ा रहता था।

हम यह भी मान सकते हैं कि भौगोलिक तथा सामाजिक पार्थक्य के कारण, विशेषकर तब, जब आदिम जनों के समूह संख्या की दृष्टि से बहुत छोटे-छोटे थे, मनुष्य में आनुवंशिक परिवर्तन संभवतः उसी युग में रहनेवाले जंगली जानवरों में परिवर्तनों की अपेक्षा कहीं तीव्र थे।

जांतव प्राणी निश्चित परिस्थितियों में जीवन के लिए अनुकूलित है। उसके अधिकांश विशिष्ट लक्षण संकीर्ण अनुकूली प्रकृति के होते हैं और जाति का संरक्षण सुनिश्चित करते हैं। यही पशुओं की संरचना और आदतों में आपेक्षिक, समय के साथ बदलती, किंतु फिर भी स्पष्टतः निर्धारित अनुकूली सप्रयोजनता का कारण है।

इसके विपरीत, आधुनिक मनुष्य में उसकी केवल कुछ, न कि अधिकांश, प्रजातीय विशिष्टताएं अनुकूली सार्थकता रखती हैं। फिर भी अनुकूलन के लेश अब भी, मिसाल के लिए, त्वचा की वर्णयुक्तता, पलक में वली के विकास, होंठों की मोटाई, गंडास्थि क्षेत्र में त्वचा के नीचे वसीय परत के विकास तथा कई अन्य चीजों में स्पष्टतः प्रकट हैं। यह सही है कि आज ये लक्षण प्रतिकूल प्राकृतिक अवस्थाओं के विरुद्ध संघर्ष में मनुष्य को उपलब्ध सुरक्षा के कृत्रिम साधनों के मुक़ाबले नगण्य महत्व के हैं। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य की प्राकृतिक अवस्थाओं पर प्रत्यक्ष निर्भरता लगातार कम हो रही है और कुछ मामलों में तो विलुप्त तक हो रही है। पर्यावरण का आधुनिक मनुष्य की प्रजातियों और पशुओं की जातियों पर प्रभाव बहुत ही भिन्न-भिन्न है। फिर भी मनुष्य की संरचना में कुछ विशिष्ट आनुवंशिक लक्षणों सहित कुछ प्रजातीय लक्षण हैं, जो आज भी पर्यावरण के प्रभाव के अंतर्गत बदल सकते हैं, विशेषकर एक देश से दूसरे देश को प्रवास के मामलों में।

जिन लोगों के जीवन की परिस्थितियों में भिन्नता थी, उनमें चयापचयी प्रक्रियाएं समान नहीं थीं। कई पीढ़ियों के उन्हीं प्राकृतिक तथा सामाजिक प्रवस्थाओं में रहने के दौरान भोजन का भिन्न रूप अनिवार्यतः कुछ प्रजातीय अभिलक्षणों को विकसित और कुछ अन्य को कम करता था।

ऐसा प्रतीत होगा कि भौगोलिक तथा सामाजिक पार्थक्य को सदा मानव समूहों के विभेदीकरण को तीव्र करना चाहिए और उन्हें जातियों (species) के निर्माण की ओर ले जाना चाहिए। बात बिलकुल ऐसी ही नहीं थी, क्योंकि श्रम के प्रभाव, समुदाय में जीवन और समूहों के सम्मिलन ने प्राकृतिक तथा सामाजिक कारणों से विकास के दौरान पैदा हुए अनेक अंतरों को ख़त्म कर दिया। इसने मानवजाति के प्रजातियों में अधिक गहन विभेदीकरण को रोका। प्रजातियों के विकास के लिए चारित्रिक विशिष्ट लक्षणों के अभिलोपन का वन्य पशुओं की जातियों में निर्बाध विभेदीकरण से, जो प्रकृति में लगातार हो रहा है, स्पष्ट विपर्यास है।

मानवजाति एक एकल जैव सत्ता का निर्माण करती है और प्रत्येक प्रजाति इस एकल समष्टि के एक भाग द्वारा अपनाये विकास के गुणात्मक रूप से विशिष्ट पथ का परिणाम है; इसलिए मानव-प्रजातियां पशुओं की जातियों या उपजातियों से सारतः भिन्न हैं।[31] पशुओं की जातियां तथा उपजातियां कमोबेश स्पष्टतः निश्चित विशिष्ट लक्षणों की समष्टि प्रदर्शित करती हैं, किंतु वैयक्तिक विचलन अपेक्षाकृत कम होते हैं। तथापि मनुष्य में प्रजातीय अंतर केवल अपेक्षाकृत बड़े समूहों की तुलना करके ही प्रकट हो सकते हैं, क्योंकि प्रजातीय की अपेक्षा वैयक्तिक विभिन्नताएं कहीं अधिक होती हैं। मानव-प्रजातियों के विशिष्ट लक्षण अंतर्मिश्रित हो जाते हैं, यानी प्रजातीय सीमांत आसानी से पार हो जाते हैं। इसलिए व्यक्ति पर प्रजातीय निदान सदा ही पूरी तरह से लागू नहीं किया जा सकता और हो सकता है कि कभी-कभी उससे कोई परिणाम ही न निकले।

३. प्राकृतिक वरण

प्रारंभिक मनुष्य का और निएंडरथल मानव का भौगोलिक पार्थक्य अन्य कारकों से, विशेषकर प्राकृतिक वरण से जुड़ा हुआ था। इसलिए यह अपरिहार्य है कि हम मनुष्य की प्रजातियों के निर्माण में इसकी भूमिका पर विचार करें।

कुछ लेखकों का मत है कि प्राकृतिक वरण आधुनिक मनुष्य के विकास में महत्वपूर्ण भाग लेता है। सामाजिक-डार्विनवादी, सुजननवादी (eugenists) और नसलवादी इसी मत को मानते हैं, जिनका दावा है कि प्रजातियों के बीच संघर्ष ही मानवजाति के विकास का आधार है।

लेखकों का एक और दल है, जो इसका विपरीत दृष्टिकोण अपनाता है और पहले मानवों (पिथिकैंथ्रोपस तथा साइनैंथ्रोपस) के आगमन के समय से मनुष्य के विकास में प्राकृतिक वरण के प्रभाव को एकदम अस्वीकार करता है। हमारा यह मत है कि यह अतिवादी दृष्टिकोण भी गलत है। इसके समर्थक मानवजाति के निर्माण की प्रक्रिया से प्राकृतिक वरण के कारक को अलग कर देते हैं और अकसर उसे "सामाजिक वरण" की धारणा से प्रतिस्थापित कर देते हैं, जो सामाजिक-डार्विनवादियों की एक प्रिय धारणा है।

प्राकृतिक वरण ने आदिम मनुष्य और उसके प्रजातीय समूहों को क्रमशः घटती हुई मात्रा में प्रभावित किया। अनुकूल और प्रतिकूल प्राकृतिक अवस्थाएं आदिम मनुष्य को केवल आदिम समाज के माध्यम से ही नहीं प्रभावित करती थीं; उनके प्रत्यक्ष प्रभाव का भी अभी प्रबल अनुभव किया जाता था।

मनुष्य के सामूहिक श्रम ने उसके विकास को प्रारंभ से ही एक विशेष चरित्र प्रदान कर दिया और उसे पशु-जगत द्वारा अनुसृत पथ से एक भिन्न रास्ते पर निर्देशित कर दिया। तथापि समुदाय में श्रम और जीवन ने मनुष्य को तुरंत ही प्राकृतिक अवस्थाओं से स्वतंत्र नहीं कर दिया। वह सामाजिक पर्यावरण, जो प्राकृतिक वरण के कारक पर पूरी तरह से पार पा सकता था, तुरंत ही पैदा नहीं हो गया। इतिहास की सबसे प्रारंभिक मंजिलों में, पूर्व-पुरापाषाण युग की आदिम और अभी अविकसित सभ्यता के समय, सामाजिक विकास के निम्न स्तर की तरफ उचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य की प्रजातियां विकास की सबसे प्रारंभिक अवस्था में और निएंडरथल काल में भी प्राकृतिक वरण के निर्माणात्मक प्रभाव को अनुभव करती थीं, चाहे वह तब तक प्रधान नहीं, गौण रूप में आ चुका था। प्राकृतिक वरण गुणात्मक रूप से नये सामाजिक-आर्थिक कारकों के संयोग में कार्य कर रहा था और अंतोक्त की भूमिका के बढ़ने के साथ-साथ उसका महत्व कम होता गया।

इस लिहाज से आधुनिक प्रजातियों का उदय और उनका विकास पूर्व-पुरापाषाण काल में प्रजाति-निर्माण से भिन्न है। मनुष्य के विकास की अंतिम अवस्था में

प्रजातीय लक्षण ऐसी लक्षण-समष्टियों में बदल गये हैं, जो केवल अंशतः ही अनुकूली हैं; प्राकृतिक वरण अब मनुष्य के विकास में कोई कारक नहीं रहा है। साथ ही आनुवंशिक परिवर्तन ज्यादा और अधिक जटिल हो गये हैं। संसार के विभिन्न भागों में मानववैज्ञानिक प्ररूप-समूहों में विभिन्न प्राकृतिक तथा सामाजिक-आर्थिक कारकों के संयुक्त प्रभाव के अंतर्गत नये लक्षण विकसित हो गये हैं। समूहों के अत्यंत विभिन्न सम्मिलन की विराट प्रक्रिया में मानववैज्ञानिक लक्षणों के नये संयोगों का आविर्भाव हुआ है। अंतर्मिश्रण की प्रक्रिया ने आनुवंशिक लक्षणों को कम टिकाऊ कर दिया है और परिवर्तन को सुगम बना दिया है।

उत्तर-पुरापाषाण युग की परवर्ती मंज़िलों में मनुष्य पर प्राकृतिक अवस्थाओं का पहले जैसा शक्तिशाली प्रभाव न रहा, क्योंकि क्रोमैग्नन तथा आधुनिक प्ररूप के अन्य फ़ासिल लोगों का अधिक विकसित समुदाय था। प्राकृतिक पर्यावरण के मुकाबले सामाजिक वातावरण का अधिक शक्तिशाली असर ज्यादा प्रभावी हो गया था। पर्यावरण के प्राकृतिक प्रभाव के क्षीण से क्षीणतर होने के साथ प्रजातीय प्ररूपों का निर्माण हुआ, जिससे प्रजातीय लक्षण आपेक्षिक और निरपेक्ष – दोनों रूपों में – अनुकूलन के कहीं कम अधीन रह गये।

४. अंतर्विवाह

प्रजातियों पर मनुष्य के सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रभाव की एक अच्छी मिसाल अंतर्विवाह अथवा सम्मिश्रण की प्रक्रिया है, जो बहुत लंबे समय से चल रही है और अब विराट आकार ग्रहण कर चुकी है (देखिये प्लेट ३ तथा ४)।

अमरीका, अफ़्रीका, एशिया तथा आस्ट्रेलिया में मिश्रित जातियों और कबीलों के बनने के कितने ही उदाहरण मिलते हैं। मेक्सिको में आबादी का लगभग ६० प्रतिशत यूरोपीयों तथा रेड इंडियनों के अंतर्विवाहों की संतान है और कोलंबिया में यही बात आबादी के ४० प्रतिशत के बारे में सही है।

विभिन्न प्रजातियों का संकरण (crossing) आसानी से हो जाता है और उसमें कोई भी शारीरिक या शरीरवृत्तिक रुकावट बाधा नहीं डालती। संतति केवल पूर्णतः स्वस्थ ही नहीं होती, बल्कि सामान्य बच्चे भी पैदा करती है। यह सुविदित है कि मिश्रित मूल – यूरोपीय तथा नीग्रो (चित्र ३५), नीग्रो तथा चीनी, यूरोपीय तथा जापानी, अमरीकी इंडियन तथा यूरोपीय, यूरोपीय तथा आस्ट्रेलियाई – के लोग बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। दक्षिण अमरीका में तिहरे



चित्र ३५. आबज्यूबजा ग्राम (अबख़ाज़ियाई स्वायत्त जनतंत्र, सोवियत संघ) का मिश्रित नीग्रो-अबख़ाज़ियाई परिवार (१६४६)
(बीच में लगभग ११२ साल की सोफ़िया मुज़ालिया बैठी हैं, बाईं ओर उनके पुत्र शीरी अवाश और दाईं ओर पौत्र वालेरी अवाश हैं, पीछे उनकी पौत्रियां नुत्सा अवाश और स्सीबा चांबा खड़ी हैं)

और उससे भी अधिक जटिल मिश्रणों का विवरण दिया गया है; उनमें नीग्रो, यूरोपीय तथा अमरीकी इंडियन सम्मिलित हैं।

महाप्रजातियों के सीमांत क्षेत्रों में लंबे समय तक सम्मिश्रण के फलस्वरूप अंतर्वर्ती संपर्क समूह पैदा हुए हैं। उराली समूह (मनसी तथा ख़नती जातियों का एक भाग) इसकी एक मिसाल है। ये समूह यूरोपाभों तथा मंगोलाभों के सम्मिश्रण द्वारा पैदा हुए थे। लाप (अथवा सआम जाति) और मारी जाति (देखिये प्लेट ५) के बारे में भी यही बात है। आज मानवजाति का कम से कम आधा भाग ऐसे लोगों से बना है, जो बहुत हद तक प्रजातीय दृष्टि से मिश्रित हैं।

प्रजातियां जिस सरलता से अंतर्विवाह कर लेती हैं और उसमें सन्निहित लोगों की लगातार बढ़ती संख्या इसका प्रमाण हैं कि उनका सामान्य उद्गम है। अकेला यही तथ्य दिखा देता है कि ये नसलवादी सिद्धांत कितने बेबुनियाद हैं, जो विभिन्न प्रजातियों के लोगों में रुधिर संबंध को अस्वीकार करते हैं।

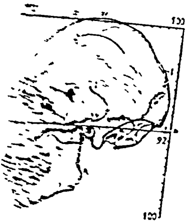
जब प्रजातियां मिश्रित होती हैं, तो संतति के अधिकांश प्रजातीय लक्षण मध्यवर्ती चरित्र के होते हैं; यह मानवविज्ञानियों द्वारा निश्चित रूप में प्रमाणित किया जा चुका है। समयांतर में स्थायी समूह रूप लेते हैं, जो संपर्क समूह कहलाते हैं।

प्रजातियों का सम्मिश्रण किसी एक समूह के सामाजिक-आर्थिक विकास की कुछ विशेषताओं के फलस्वरूप तेज़ी से बढ़ने के कारण होता है; अपना प्रदेश बढ़ाने में वह अपने पड़ोसी समूहों को समेट लेता है और उन्हें आत्मसात कर लेता है।

ऊपर प्रजातियों के सम्मिश्रण के बारे में जो कहा गया है, वह दिखाता है कि मानव-प्रजातियां जीववैज्ञानिक जातियों में विकास की कोई मंज़िल नहीं होतीं। जैसे ही कोई प्रजाति बनती है, वह अन्य प्रजातियों के साथ मिश्रित होना शुरू कर देती है। यह संभव है कि सुदूर अतीत में कुछ प्रजातियां कहीं अधिक पूर्णतर विकास से होकर गुज़रीं। लेकिन तब भी सामाजिक-आर्थिक कारक ने, परवर्ती मंज़िलों के मुकाबले कहीं कमज़ोर होने पर भी, कुछ प्रजातीय अंतरों या अंतर-समष्टियों को कम और कुछ को मज़बूत करते हुए प्रजाति-निर्माण की प्रक्रिया को रूपांतरित किया। यह किसी हद तक प्रजातियों के दृश्य अंतरों की व्याख्या करता है; इसके अलावा, प्रजातियों के पार्थक्य की मात्रा उस सीमा से अनुबंधित होती है, जहां तक वे संमिश्रण की प्रक्रिया में खींची गई हैं।

अंतर्विवाह की जो प्रक्रिया उत्तर-पुरापाषाण काल में शुरू हुई और आगामी सहस्राब्दियों में और तेज़ हुई, वह मध्यवर्ती समूहों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर और सभी प्रजातियों के फिर एक एकल शारीरिक प्ररूप में विकास की ओर ले गई (और अब भी ले जा रही है)। इसलिए प्रजातियों के विभेदीकरण के लिए अंतर्विवाह कोई बहुत अधिक सार्थकता का नहीं रह जाता।

मानववैज्ञानिक प्ररूपों के कुछ समूह, जैसे आर्कटिक (एस्कीमो), पिग्मी और आस्ट्रेलियाई आदिवासी समूह, लंबे समय तक पूर्ण पार्थक्य में रहे थे और इसने उनके विशिष्ट प्रजातीय लक्षणों को तीव्र कर दिया। तथापि पिछले पांच सौ वर्षों में इन अपेक्षाकृत पृथक्कित समूहों तक ने अपनी तथाकथित "प्रजातीय शुद्धता" को गंवा दिया है, जिससे आज कहीं भी कोई सचमुच में "शुद्ध" प्रजाति नहीं रह गई है। "शुद्ध प्रजाति" की कल्पना नसलवादियों की एक ईजाद है, जो वैज्ञानिक तथ्यों के प्रतिकूल है। किसी भी सूरत में, "प्रजातीय शुद्धता" या लोगों के सम्मिश्रण की मात्रा ने उनके सामाजिक-आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास में कभी कोई भूमिका नहीं अदा की है।



[illegible]) गुफाओं से प्राप्त [illegible]

[illegible] के छिद्र के ऊपर [illegible] बिंदु; b—मनुप्रस्थ [illegible] l—पार्श्विका तथा [illegible] कपाल मनुप्रस्थ [illegible]-पिछला बिंदु; [illegible]

[illegible] है कि [illegible] की प्रजातियां भी सम्मि[illegible] , [illegible] [illegible] । इनका [illegible] संभवतः [illegible] पर्वत [illegible] में [illegible]

[illegible]

ऊपर जो कहा गया है, उसके दृष्टिगत यह मान लेना होगा कि संकरण के कारक को सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के आज के युग में, जब कितने ही देशों में प्रजातीय दीवारें दूर कर दी गई हैं, विशेषकर महती सार्थकता प्राप्त हो गई है। हम इससे एक और निष्कर्ष निकाल सकते हैं—प्रजाति-निर्माण में किसी भी कारक का प्रभाव मानव समाज के विकास के दौरान बहुत काफ़ी बदल जाता है। किसी समय प्राकृतिक पार्यवय और प्राकृतिक वरण का प्रजाति-निर्माण में एक महत्वपूर्ण भाग था, किंतु बाद में प्रजातियों और मानववैज्ञानिक प्ररूपों का संमिश्रण मुख्य कारक बन गया। हम यहां तक कह सकते हैं कि प्रजातियों का संमिश्रण अब प्रजाति-निर्माता कारक नहीं रहा है और ऐसा कारक बन गया है, जो प्रजातीय अंतरों को मिटाने की ओर प्रवृत्त है।

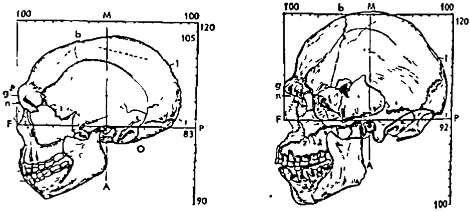
संक्षेप में, मनुष्य और उसकी प्रजातियों का विकास विभिन्न कारकों के प्रभाव के अंतर्गत चल रहा था, और अंत में सामाजिक-आर्थिक कारक अन्य कारकों पर छाने और उनमें से कुछ को काम करना बंद करने तक के लिए मजबूर करने लगे।

प्रजातियों के निर्माण पर प्राकृतिक पर्यावरण के और सामाजिक वातावरण के प्रभाव की मूल समस्या को इस दृष्टिकोण से जांचना चाहिए। पहले मनुष्यों में और निएंडरथल मानवों में पर्यावरण का प्रभाव कहीं अधिक शक्तिशाली था और प्रजातीय विशिष्टताएं अनुकूली चरित्र की अधिक थीं, क्योंकि प्राकृतिक वरण अभी क्रियाशील था। आधुनिक महाप्रजातियों के निर्माण पर पर्यावरण का कम प्रभाव पड़ा, यद्यपि वह अब भी उल्लेखनीय था। वर्तमान लघु प्रजातियां और समूह पर्यावरण के प्रभाव को और भी कम मात्रा में प्रतिबिंबित करते हैं, उनके विशिष्ट लक्षण अधिकाधिक सामाजिक वातावरण के प्रभाव के अंतर्गत निर्मित होते हैं।

इस तरह प्राकृतिक तथा सामाजिक कारकों की सीमा निरंतर बदलती रहती है। दोनों कारक-समूह मनुष्य के विकास और प्रजाति-निर्माण पर संयुक्त प्रभाव डालते हैं और प्रजातियों के अंततः विलुप्त हो जाने तक डालते रहेंगे।

५. महाप्रजातियों का निर्माण

मानव-प्रजातियों का उद्गम और विकास एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया है और हम इस समस्या के पूरे हल से अब भी बहुत दूर हैं। तथापि इस प्रक्रिया के आम लक्षण सोवियत मानववैज्ञानिकों की कृतियों में पर्याप्त स्पष्टता के साथ निरूपित



चित्र ३६. एत-ताबून (बायें) तथा एस-स्खूल (दायें) गुफाओं से प्राप्त निएंडरथल कपाल

FP — फ़्रैंकफ़र्ट मानवमितीय क्षैतिज; MA – कान के छिद्र के ऊपर से जानेवाला अनुलंब; n – नासामूल बिंदु; g – ललाट बिंदु; b—अनुप्रस्थ ललाट तथा अनुदैर्घ्य पार्श्विका सीवनों का प्रतिच्छेदन बिंदु; *l* – पार्श्विका तथा अनुप्रस्थ पश्चकपाल सीवनों का प्रतिच्छेदन बिंदु; i – पश्चकपाल अनुप्रस्थ कटक का निचला और पिछला बिंदु; o – पश्चकपाल रंध्र का मध्य-पिछला बिंदु; माप मिलीमीटरों में हैं

यह संभव है कि फ़ासिल मानव की प्रजातियां भी सम्मिश्रित होती थीं, यद्यपि आज जितनी हद तक नहीं। इसका प्रमाण संभवतः फ़िलिस्तीन में कार्मेल पर्वत की *एस-स्खूल तथा एत-ताबून गुफाओं में खोदकर निकाले गये निएंडरथल मानवों* में मिलता है (चित्र ३६), जहां प्राचीन लोगों के समूहों के शारीरिक प्ररूपों में सुस्पष्ट विभिन्नता है। यह बिलकुल संभव है कि निएंडरथल मानव या उनकी संतति ने आधुनिक प्ररूप के मनुष्य के समूहों से, जो पैदा हो रहे थे, सम्मिश्रण किया हो।

अंतर्विवाह की प्रक्रिया द्वारा अधिकांश प्रजातीय समूहों के बीच की सीमांत रेखाओं का अभिलोपन हो भी चुका है। यह मान लेना होगा कि मानववैज्ञानिक प्ररूपों के अंतर मुख्य प्रवर्गों, यानी प्रजातियों के अंतरों की अपेक्षा अधिक तेज़ी से विलुप्त होंगे। जहां किसी महाप्रजाति की बड़ी संख्या एक ठोस संहति में रह रही है, या एस्कीमो अथवा पिग्मी जनों की तरह पार्थक्य में रह रही है, वहां यह प्रजातीय सम्मिश्रण द्वारा अपेक्षाकृत अछूती रह सकती है।

ऊपर जो कहा गया है, उसके दृष्टिगत यह मान लेना होगा कि संकरण के कारक को सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के आज के युग में, जब कितने ही देशों में प्रजातीय दीवारें दूर कर दी गई हैं, विशेषकर महती सार्थकता प्राप्त हो गई है। हम इससे एक और निष्कर्ष निकाल सकते हैं – प्रजाति-निर्माण में किसी भी कारक का प्रभाव मानव समाज के विकास के दौरान बहुत काफ़ी बदल जाता है। किसी समय प्राकृतिक पार्थक्य और प्राकृतिक वरण का प्रजाति-निर्माण में एक महत्वपूर्ण भाग था, किंतु बाद में प्रजातियों और मानववैज्ञानिक प्ररूपों का संमिश्रण मुख्य कारक बन गया। हम यहां तक कह सकते हैं कि प्रजातियों का संमिश्रण अब प्रजाति-निर्माता कारक नहीं रहा है और ऐसा कारक बन गया है, जो प्रजातीय अंतरों को मिटाने की ओर प्रवृत्त है।

संक्षेप में, मनुष्य और उसकी प्रजातियों का विकास विभिन्न कारकों के प्रभाव के अंतर्गत चल रहा था, और अंत में सामाजिक-आर्थिक कारक जैव कारकों पर छाने और उनमें से कुछ को काम करना बंद करने तक के लिए मजबूर करने लगे।

प्रजातियों के निर्माण पर प्राकृतिक पर्यावरण के और सामाजिक वातावरण के प्रभाव की मूल समस्या को इस दृष्टिकोण से जांचना चाहिए। पहले मनुष्यों में और निएंडरथल मानवों में पर्यावरण का प्रभाव कहीं अधिक शक्तिशाली था और प्रजातीय विशिष्टताएं अनुकूली चरित्र की अधिक थीं, क्योंकि प्राकृतिक वरण अभी क्रियाशील था। आधुनिक महाप्रजातियों के निर्माण पर पर्यावरण का कम प्रभाव पड़ा, यद्यपि वह अब भी उल्लेखनीय था। वर्तमान लघु प्रजातियां और समूह पर्यावरण के प्रभाव को और भी कम मात्रा में प्रतिबिंबित करते हैं, उनके विशिष्ट लक्षण अधिकाधिक सामाजिक वातावरण के प्रभाव के अंतर्गत निर्मित होते हैं।

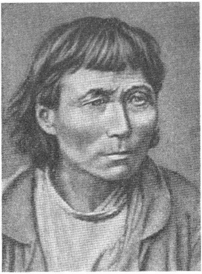
इस तरह प्राकृतिक तथा सामाजिक कारकों की सीमा निरंतर बदलती रहती है, दोनों कारक-समूह मनुष्य के विकास और प्रजाति-निर्माण पर संयुक्त प्रभाव डालते हैं और प्रजातियों के अंततः विलुप्त हो जाने तक डालते रहेंगे।

५. महाप्रजातियों का निर्माण

मानव-प्रजातियों का उद्गम और विकास एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया है और हम इस समस्या के पूरे हल से अब भी बहुत दूर हैं। तथापि इस प्रक्रिया के आम लक्षण सोवियत मानवविज्ञानियों की कृतियों में पर्याप्त स्पष्टता के साथ निरूपित

किये जा चुके हैं और हम प्रजातियों के उद्गम, उनके मूल प्रावास, उनके प्रसार के पथों और उनके संबंध की आधुनिक धारणा का संक्षिप्त सर्वेक्षण करने का यत्न करेंगे।

या० या० रोगीन्स्की[33] द्वारा व्यक्त दृष्टिकोण के अनुसार यह संभव है कि निएंडरथल मानव के आधुनिक मनुष्य में रूपांतरण की अंतिम मंजिलों में से एक में, अब से लगभग १,००,००० साल पहले, आधुनिक मानव के मूल प्रावास, अर्थात एशिया के कुछ प्रदेशों और अफ़्रीका और यूरोप के संलग्न हुए प्रदेशों में दो बुनियादी प्रजातीय समूह – दक्षिण-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी विकसित हुए। वे हिंदुकुश और हिमालय की अलंघ्य पर्वत-श्रेणियों तथा हिंदचीन के पर्वतों से विभक्त थे।



चित्र ३७. एवेंक (तुंगूस)
(मंगोलाभ महाप्रजाति की उत्तरी शाखा)

दक्षिण-पश्चिमी शाखा ने यूरोपाभ तथा नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ महाप्रजातियों को पैदा किया। इन दोनों महाप्रजातियों की छोटी प्रजातियां उत्तर-पूर्व के सिवा सभी दिशाओं में फैल गईं।

उत्तर-पूर्वी शाखा, जिसने मंगोलाभ महाप्रजाति को पैदा किया, जिसके विशिष्ट लक्षण प्रारंभ में सुस्पष्ट नहीं थे, बाद में कई शाखाओं में बंट गई – महाद्वीपीय (उत्तर मंगोलाभ, चित्र ३७), प्रशांतमहासागरीय (दक्षिण मंगोलाभ) और अमरीकी। अमरीकी मंगोलाभ प्रजाति वर्तमान बेरिंग जलडमरूमध्य की सूखी भूमि को पार करके नई दुनिया में पहुंच गई। इन तीनों मंगोलाभ प्रजातियों ने उन मानववैज्ञानिक समूहों के आधार का निर्माण किया, जो बाद में एशियाई तथा अमरीकी महाद्वीपों पर उदित हुए।

मंगोलाभ महाप्रजाति आज यूरोपाभ महाप्रजाति से पश्चिमी साइबेरिया और उत्तर-पूर्वी यूरोप के उराली (उराली-लाप) प्ररूप समूहों द्वारा जुड़ी हुई है। यह

मानने का हर कारण है कि उराली समूह यूरोपामों तथा मंगोलाभों के संकरण द्वारा पैदा हुआ था। यह संभव है कि इन दोनों महाप्रजातियों में पुराने और निकट संबंध थे, क्योंकि वे सामान्य उद्गम के थे और सामान्य आवास से आये थे। उनके सबसे प्रारंभिक पूर्वजों को आद्य-मंगोलाभ (Proto-Mongoloid) और आद्य-यूरोपाभ (Proto-Europeoid) कहा जा सकता है। उत्तर-पूर्वी आद्य-मंगोलाभ प्रजाति संभवतः दक्षिण-पश्चिम के सिवा सभी दिशाओं में फैल गई।

यह अनेक सोवियत मानवविज्ञानियों द्वारा समर्थित धारणा के अनुसार मुख्य प्रजातियों की उत्पत्ति के चित्र की रूपरेखा है, जो बहुकेंद्रवाद के सिद्धांत (polycentric theory) के विरुद्ध है, जिसे मिसाल के लिए फ़्रांज़ वाइडेनराइख़ मानते हैं। उनका सिद्धांत कहता है कि आधुनिक प्रजातियां निएंडरथलों की स्थानीय प्रजातियों से यूरोप, अफ़्रीका, पूर्वी एशिया और आस्ट्रेलिया में एक-दूसरे से बहुत दूर-दूर जगहों में विकसित हुई।[36] दूसरे शब्दों में वह मानते हैं कि ऐसे कई केंद्र थे, जिनमें प्रजातियों ने रूप ग्रहण किया।

एककेंद्रवाद (monocentrism) के पक्ष में या० या० रोगीन्स्की[37] ने कुछ नये तर्क प्रस्तुत किये। उन्होंने आधुनिक और फ़ासिल मनुष्यों को अनेक खोपड़ियों का, विशेषकर मास्को के मानवविज्ञान संग्रहालय में उपलब्ध सामग्री का, और इस विषय पर विस्तृत साहित्यिक तथ्य-सामग्री का अध्ययन किया और दिखाया कि एक ही प्रदेश की सीमाओं के भीतर प्राप्त निएंडरथल मानव और आधुनिक फ़ासिल मानव की खोपड़ियां प्रत्यक्ष आनुवंशिकता के वे चिह्न नहीं दर्शातीं, जिनकी बहुकेंद्रवाद के सिद्धांत के अनुसार अपेक्षा की जानी चाहिए।

एक और महत्वपूर्ण तर्क सभी आधुनिक प्रजातियों में अनानुकूली प्रकृति के कितने ही लक्षणों के अस्तित्व द्वारा उपलब्ध किया जाता है, जो निएंडरथलों में अविद्यमान थे। ऐसे लक्षणों का, जिनमें से कुछ बहुत ही सूक्ष्म हैं, समांतर, स्वतंत्र विकास वाइडेनराइख़ की आधुनिक प्रजातियों के स्थानीय निएंडरथल प्रजातियों से विकास की परिकल्पना को अत्यंत असंभाव्य बना देता है। इसलिए बहुकेंद्रवाद के सिद्धांत को मानववैज्ञानिक तथ्यसामग्री में कोई समर्थन नहीं मिलता। तथापि यह और कह दिया जाना चाहिए कि या० या० रोगीन्स्की द्वारा व्यक्त मत[38] के अनुसार, आधुनिक प्ररूप का मानव जिस क्षेत्र में अस्तित्व में आया, वह बहुत ही विस्तृत था, न कि कोई सीमित क्षेत्र, जैसा कि कुछ एकमूलवादी के समर्थक हमें विश्वास कराना चाहेंगे; इसके अलावा, इस विस्तृत क्षेत्र पर विभिन्न प्रजातियों का सम्मिश्रण और मध्यवर्ती स्वरूपों का आविर्भाव भी हुआ।

नूतनतम खोजों के दृष्टिगत आधुनिक मानव का मूल आवास बहुत ही विस्तृत प्रदेश था, किंतु ऐसे कोई स्पष्टतः सीमांकित केंद्र नहीं थे, जिनमें महाप्रजातियों ने रूप लिया। विचाराधीन प्रदेश को केवल तब ही यथार्थतः निर्धारित किया जा सकता है, जब फ़ासिल मनुष्यों की अनेक और नई खोजें हो जायें।

अब हमें सोवियत मानवविज्ञान के दृष्टिकोण से महाप्रजातियों की उत्पत्ति की समस्या को देखना चाहिए।

६. यूरोपाभ महाप्रजाति

सबसे संभव परिकल्पना यह है कि यूरोपाभ महाप्रजाति के मुख्य भाग का मूल आवास उस विशाल क्षेत्र में था, जिसमें दक्षिण-पश्चिमी एशिया, दक्षिणी यूरोप और उत्तरी अफ़्रीका आता है। यह संभव है कि यूरोपाभों के आवास में मध्य एशिया और दक्षिण-पश्चिमी एशिया की स्तेपियों और तराइयों के कुछ भाग और अपने सूखे समुद्री प्रदेशों के साथ शेष भूमध्यसागरीय क्षेत्र भी आ जाते हों।

यहां से आद्य-यूरोपाभ धीरे-धीरे सारे यूरोप और उत्तरी अफ़्रीका को घेरते हुए कई दिशाओं में फैल सकते थे। ये प्रवास प्रत्यक्षतः उत्तर-पुरापाषाण युग या उससे भी बाद के युगों में हुए।

तथापि यह संभव है कि मनुष्य के आधुनिक प्ररूप ने पूर्व-पुरापाषाण युग के अंत में रूप लिया हो और उपरोक्त तथा निकटवर्ती प्रदेशों में निएंडरथल लोगों के अवशेषों को आत्मसात करने की प्रक्रिया कहीं पहले शुरू हो गई हो। प्रकटतः यही आधुनिक प्ररूप के मनुष्यों के अवशेषों की लगभग उसी संस्तर में उपस्थिति का कारण हो सकता है, जिसमें उत्तरवर्ती निएंडरथल अवशेष पाये जाते हैं।

यूरोपाभों के प्रसार के तरीकों के बारे में उपरोक्त सिद्धांत के अलावा भी कुछ सिद्धांत हैं। कुछ लेखकों का मत है कि बहुत ही प्राचीन काल में आद्य-यूरोपाभों का एक समूह पूर्वी एशिया में पहुंच गया और यहां उसने एक मानववैज्ञानिक प्ररूप-समूह को जन्म दिया, जिसने एशियाई महाद्वीप के तटवर्ती प्रदेशों, जापान और कुरील द्वीपसमूहों को आबाद किया। तथापि इस समूह के आद्य-यूरोपाभ उद्गम के सिद्धांत को सोवियत मानवविज्ञानियों की प्रबल आपत्तियों का सामना करना पड़ता है, जिन्होंने यह परिकल्पना रखी है कि कुरील समूह के नाम से

विज्ञात इस समूह का आस्ट्रेलाभों से निकटतः संबद्ध होना अधिक संभव है (देखिये पृष्ठ ६८)।

पोलीनेशियाइयों को भी यूरोपाभों से संबंधित माना गया है; यह कहा जाता है कि उनके पूर्वजों ने दक्षिण-पूर्व की (भारत और इंडोनेशिया होते हुए हवाई, सामोआ, टाहिटी और टुआमोटा द्वीपों तक) लंबी यात्रा की और न्यूज़ीलैंड के दोनों द्वीपों सहित सारे पोलीनेशिया पर छा गये। तथापि सोवियत मानवविज्ञानियों ने निश्चित रूप से दिखला दिया है कि पोलीनेशियाइयों का मिश्रित मंगोलाभ-आस्ट्रेलाभ उद्गम है और अब उनमें एक अंतर्वर्ती समूह के लक्षण हैं (चित्र ३८–४०)।

पोलीनेशियाइयों को "श्वेत प्रजाति" घोषित करने की इच्छा का स्रोत कई मामलों में "आर्य" नसली सिद्धांत में है, जिसका दावा है कि उत्तरी यूरोपाभ प्राचीन काल में भारत और ईरान में पैदा हुए थे और उन्होंने मानवजाति के प्रगतिशील विकास में एक प्रमुख भूमिका अदा की है। अपनी जोड़-तोड़ के लिए उपयुक्त मानववैज्ञानिक प्ररूपों की खोज में इस सिद्धांत के कुछ समर्थकों ने अपने को गौरवर्ण यूरोपाभ प्ररूपों तक ही सीमित नहीं रखा है, बल्कि श्यामवर्ण यूरोपाभ समूहों और पोलीनेशियाइयों जैसे अयूरोपाभ समूहों तक को मूल "आय." के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार हो गये हैं।

यूरोपाभों के पूर्व या सुदूर पूर्व को प्राचीन काल में प्रवास की विभिन्न परिकल्पनाओं को अस्वीकार करके हमें यूरोपाभों के विकास का एक सार्विक चित्र तैयार करने और अन्य प्रजातियों के साथ उनके संबंध की व्याख्या करने के लिए अधिक निकटवर्ती क्षेत्रों की तरफ़ देखना चाहिए।

सर्वप्रथम और सर्वप्रधान यूरोपाभ और नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ प्रजातियों में संबंधों, उनके अलग और विभेदित होने और उनके पारस्परिक संपर्क के प्रश्न हैं। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि अतीत में किसी समय ये दोनों महाप्रजातियां एक एकल समष्टि का निर्माण करती थीं। इसका प्रमाण, मिसाल के लिए, नीग्रोसम लक्षणों के दो कंकालों (ग्रीमाल्दी प्ररूप, १९०६ में प्राप्त) की उत्तर पुरापाषाणकालीन खोजें हैं, जो फ़्रांसीसी-इतालवी सीमांत पर ग्रोत्ते दि एनफ़ांत, मेंतों में मिले थे। बाद में किसी समय बुनियादी समूह दो महाप्रजातियों – यूरोपाभ तथा नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ – में विभक्त हो गया।

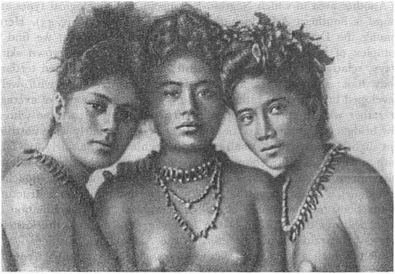
इसके बाद लाखों वर्षों के दौरान दोनों प्रजातियां अत्यंत भिन्न-भिन्न प्राकृतिक अवस्थाओं, अलग-अलग मात्रा की गरमी, नमी, आदि वाले विविध प्रदेशों और



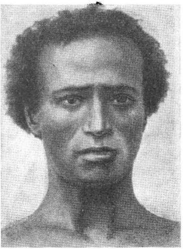
चित्र ३८. पोलीनेशियाई, माओरी मुखिया, न्यूज़ीलैंड



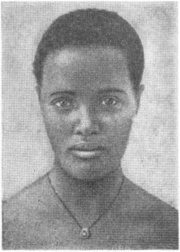
चित्र ३९. सामोआवासी युवा पोलीनेशियाई



चित्र ४०. सामोआ की पोलीनेशियाई तरुणियां
(विषुवतीय और मंगोलाभ महाप्रजातियों का संपर्क समूह)



चित्र ४१. गल्ला क़बीले का पुरुष
(इथिओपिया)



चित्र ४२. अम्हारा क़बीले की स्त्री
(इथिओपिया)

(विषुवतीय और यूरोपाभ महाप्रजातियों का संपर्क समूह)

महाद्वीपों पर फैल गईं और इस प्रकार उन्होंने बहुत भिन्न प्रजातीय लक्षण विकसित किये। बहुत भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में लाखों वर्षों के विकास ने श्यामवर्ण सूदानी नीग्रो और क्षीण वर्णयुक्ततावाले उत्तरी या पूर्वी यूरोपीयों में अंतर पैदा कर दिया।

तथापि दोनों प्रजातियों के इन दो चरम समूहों के बीच अनेक अंतर्वर्ती समूह हैं; जिन्हें बड़ी कठिनाई से नीग्रोसम या यूरोपाभ के रूप में पहचाना जा सकता है। आज यूरोपाभ क्षेत्र के दक्षिणी भाग में अंतर्वर्ती प्ररूपों की एक पूरी पट्टी है।

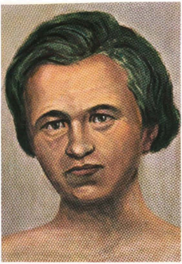
भूमध्य सागर क्षेत्र, उत्तर-पूर्वी अफ़्रीका और दक्षिणी भारत में अनेक अंतर्वर्ती यूरोपाभ-नीग्रोसम (अथवा नीग्रोसम-यूरोपाभ) प्ररूप समूह हैं: वे यह भूलने को मजबूर करते हैं कि नीग्रो और यूरोपीय लोगों में प्रखर अंतर है। इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण पूर्वी अफ़्रीकी अथवा इथिओपियाई प्ररूप समूह है (देखिये प्लेट ६), जिसमें नीग्रोसम तथा यूरोपाभ लक्षणों का अंतर्वेधन बहुत व्यापक है, यद्यपि प्राबल्य नीग्रोसम लक्षणों का ही है (चित्र ४१–४२)। दोनों महाप्रजातियों का प्राचीन संबंध यहीं सबसे स्पष्टतापूर्वक प्रदर्शित होता है।

एक और क्षेत्र, जिसमें अंतर्वर्ती नीग्रोसम-यूरोपाभ मानववैज्ञानिक प्ररूप पाये जाते हैं, भारत तथा श्रीलंका (चित्र ४३) सहित दक्षिणी एशिया है। यहां द्रविड़ों तथा समान मानववैज्ञानिक समूहों में हम प्रजातीय लक्षणों की एक समष्टि पाते हैं: स्याह, मध्यम भरी त्वचा; सिर पर लहरीले अपेक्षाकृत महीन बाल; साधारणतः विकसित तृतीयक शरीर रोम; सुविकसित भ्रू-चापों के साथ कुछ ढलवां और काफ़ी चौड़ा माथा; ख़ासी नीची नेत्रगुहाएं; औसत या ख़ासी चौड़ी कत्थई आंखें, जिनमें ऊपरी पलक विना वली की होती है; नीचे नासासेतु तथा ख़ासे चौड़े नथनोंवाली सीधी या कुछ उत्तल नाक; कुछ-कुछ मोटे होंठ; छोटा या मध्यम चिबुक; मध्यम विकास की गंडास्थियोंवाला ख़ासा नीचा चेहरा; किंचित निकला हुआ ऊपरी जबड़ा; ऊंचा और संबा सिर; औसत से कुछ बड़ा धड़। प्रजातीय लक्षणों का यह संयोग कुछ भारतीय समूहों को पूर्वी नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ प्ररूपों या आस्ट्रेलियाई आदिवासियों तक के निकट ले आता है।

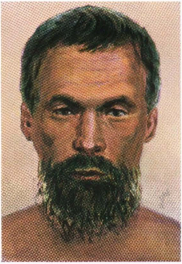
इस प्रकार की लक्षण समष्टियां यूरोपाभ तथा नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ महाप्रजातियों के कुछ प्ररूप समूहों में घनिष्ठ संबंधों का प्रमाण हैं और वे स्पष्टतः दिखाती हैं कि यद्यपि ये प्रजातियां अपने ऐतिहासिक विकास के दौरान स्पष्टतः सीमांकित हो चुकी हैं, तथापि वे हर जगह पूरी तरह से अलग नहीं हो गई हैं। इसके अलावा, अंतःप्रजातीय सम्मिश्रण की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रक्रिया मानवजाति में इस प्रकार की मिश्रित लक्षण समष्टियों की संख्या को बढ़ा रही है।

अपने अस्तित्व के लाखों वर्षों में यूरोपाभ महाप्रजाति ने आंतरिक विभेदीकरण का अनुभव किया है, जो अंशतः प्राकृतिक अवस्थाओं, जैसे जलवायु, और अंशतः सामाजिक कारकों (जनसंख्या की वृद्धि, प्रवास, क़बीलों और जनों का सम्मिश्रण, आदि) के कारण था। इस प्रकार लघु प्रजातियों ने रूप लिया और पृथक मानववैज्ञानिक प्ररूप निर्मित हुए। विभेदीकरण और लघु प्रजातियों के निर्माण के साथ उनका सम्मिश्रण हुआ, जो प्रजाति-निर्माण के क्रमशः मंद होने का लाक्षणिक उदाहरण है और एक ऐसी प्रक्रिया है, जो कभी संपूर्णता नहीं प्राप्त करती। मानववैज्ञानिक प्ररूपों के सम्मिश्रण ने विभेदीकरण को भंग और मंद कर दिया और यूरोपाभ लघु प्रजातियों के बीच घनिष्ठ संबंध और उनके सम्मिश्रण का पथ प्रशस्त किया।

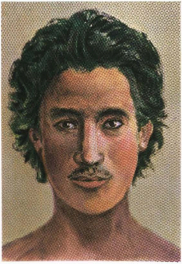
सबसे पहले रूप ग्रहण करनेवाली यूरोपाभ लघु प्रजाति भूमध्यसागरीय प्रजाति थी, जो आधुनिक प्रकार के मानव के मूल आवास से घनिष्ठतः संबद्ध थी। यह स्वाभाविक ही था कि यहां मनुष्य गहरे रंग की त्वचा, आंखों और बालों को



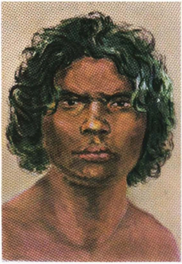
लाप अथवा सग्राम
(यूरोपाभ और मंगोलाभ
महाप्रजातियों का संपर्क समूह)



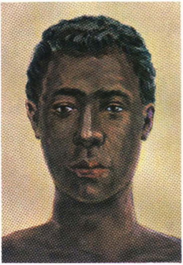
मारी
(यूरोपाभ और मंगोलाभ
महाप्रजातियों का संपर्क समूह)



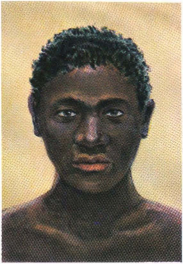
अरब
(यूरोपाभ महाप्रजाति की दक्षिणी
शाखा)



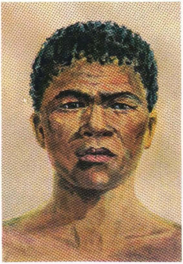
वेद्दाह
(विषुवतीय महाप्रजाति की
ओशेनियाई शाखा)



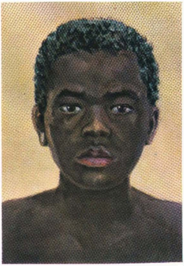
इथियोपियाई
(यूरोपाभ और विषुवतीय महाप्रजातियों का संपर्क समूह)



बाबिंगा नीग्रील्लो
(विषुवतीय महाप्रजाति की अफ़्रीकी शाखा)



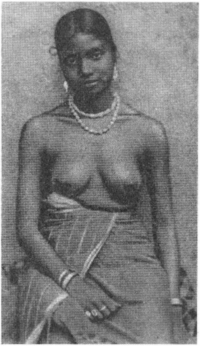
बुशमैन
(विषुवतीय महाप्रजाति की अफ़्रीकी शाखा)



सेमांग नीग्रीटो
(विषुवतीय महाप्रजाति की ओशेनियाई शाखा)

कायम रखता, जो दक्षिणी यूरोपाभों (उदाहरण के लिए अरब लोगों, देखिये प्लेट ४) के लिए लाक्षणिक हैं। यह प्रजाति दक्षिणी और किसी हद तक मध्य यूरोप, उत्तर अफ़्रीका, दक्षिण-पश्चिमी एशिया, काकेशिया, मध्य एशिया और भारत के उत्तरी भाग के बहुत बड़े क्षेत्र पर बहुतायत से फैली हुई है।

प्रागैतिहासिक काल में इस प्रदेश पर ग्रीमाल्दी (चित्र ४४), क्रोमैग्नन तथा कौंब-कैपल (औरिगनेक मानव) प्ररूपों के उत्तर पुरापाषाणकालीन लोगों का निवास था। यह संभव है कि इनमें से क्रोमैग्नन प्ररूप ग्रीमाल्दी (नीग्रोसम) और औरिगनेक प्ररूपों से बाद में विकसित हुआ। उत्तर अफ़्रीका के विभिन्न भागों में प्राप्त यूरोपाभ प्ररूप के उत्तर पुरापाषाणकालीन कंकाल क्रोमैग्नन प्ररूप के सबसे निकट हैं। जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, क्रोमैग्नन के समान दो कंकाल सोवियत संघ में क्रीमिया में मुर्ज़ाक-कोबा गुफ़ा में और वोरोनेज के निकट कोस्त्योन्की ग्राम में मिल चुके हैं।



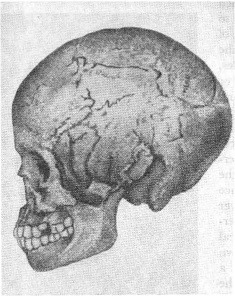
चित्र ४३. श्रीलंका की तमिल स्त्री (विषुवतीय और यूरोपाभ महाप्रजातियों का संपर्क समूह)

ये खोजें हमें आधुनिक यूरोपाभों के—मुख्यतः भूमध्यसागर क्षेत्र के—पुरापाषाणकालीन पूर्वजों की अस्पष्ट रूपरेखा ही करती हैं और इन अवशेषों में लघु प्रजातियों के चिह्न पाना अब कठिन है। विशेषज्ञों को नवपाषाणकालीन कंकालों में यूरोपाभ लघु प्रजातियों के कमोबेश स्पष्ट चिह्न मिलते हैं; वे मानववंशानिक प्ररूपों के कुछ समूहों तक को पहचान लेते हैं—विशेषकर खोपड़ी के चौड़ाई में विकास और अधिक गोलाकार आकृति प्राप्त कर लेने के कारण।

मानववंशानिक तथा पुरातात्विक सम्पसामग्री दिखाती है कि यूरोपाभ प्रजाति की उत्तरी शाखा ने अपने पूर्वजों के उत्तरी यूरोप में देर से आगमन के कारण बाद में रूप ग्रहण किया, जो हिमयुग में एक बर्फ से ढंका हुआ इलाक़ा था। यूरोप

के दक्षिणी भाग हिमाच्छादित नहीं हुए थे, जिससे लोग वहां उत्तरी यूरोप पहुंचने के कई हज़ार साल पहले निवास और विकास करते रह सके।

यूरोपामों के उत्तर की ओर प्रगमन के बीस या तीस हज़ार वर्षों के दौरान उनके शारीरिक प्ररूप में कुछ परिवर्तन आये। इन परिवर्तनों में संभवतः सबसे उल्लेखनीय त्वचा, केश तथा नेत्रों का रंग हलका हो जाना अथवा वर्णकहरण है, जो उत्तरी यूरोपामों का एक प्रारूपिक लक्षण है। इन परिवर्तनों के कारण पूर्णतः स्पष्ट नहीं हैं, किंतु प्रकटतः उनका शीतोष्ण और शीतल जलवायु कटिबंधों की नई अवस्थाओं से संबंध है।



चित्र ४४. मेंतों के निकट ग्रोते दि एनफ़ांत से प्राप्त ग्रीमाल्दी प्ररूप (नीग्रोसम लक्षण से युक्त) के युवक की खोपड़ी (१६०६)

हमें यहां यह उपबंध लगा देना चाहिए कि जहां तक प्रजातीय अभिलक्षकों का संबंध है, उत्तरी यूरोपाम अथवा बाल्टिक प्रजाति में, जिसने अपेक्षाकृत ह्रास के समय में रूप ग्रहण किया है, वे इतनी सुस्पष्टता के साथ व्यक्त नहीं हैं कि जितनी दक्षिणी यूरोपाम प्रजाति में। इसे भिन्न-भिन्न उद्गम के मानववैज्ञानिक प्ररूपों का एक ऐसा समूह ही अधिक मानना होगा, जो अधिक ठंडे और नम जलवायु की समान अवस्थाओं के अंतर्गत वर्णकहरण की प्रक्रिया से होकर गुज़रे हैं।

यूरोपाम प्रजाति की उत्तरी तथा दक्षिणी शाखाओं के साथ-साथ यूरोप में विभिन्न अंश की वर्णकयुक्तता के अनेक अंतर्वर्ती मानववैज्ञानिक प्ररूप-समूह भी हैं। वे उत्तरी तथा दक्षिणी शाखाओं द्वारा अधिकृत क्षेत्रों के बीच एक बड़े इलाक़े पर बसे हुए हैं (न० म० चेबोक्सारोव, ग० फ़० देबेत्स)।

७. नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ महाप्रजाति

उष्ण कटिबंध में रहनेवाले अधिकांश मानववैज्ञानिक प्ररूप-समूह विषुवतीय अथवा नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ महाप्रजाति का निर्माण करते हैं, जो, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, दो शाखाओं – अफ़्रीकी अथवा नीग्रोसम और ओशेनियाई अथवा आस्ट्रेलाभ (चित्र ४५)– में बंटी हुई है।

यदि हम अफ़्रीकी नीग्रो लोगों की आस्ट्रेलाभ जनों से तुलना करें, तो हम पाते हैं कि अनेक विस्मयजनक समान लक्षणों के अलावा कई अन्य ऐसे लक्षण भी हैं, जो भिन्न हैं। पहली बात तो यही है कि नीग्रो लोगों का शरीर रोम अल्प-विकसित है, कितने ही मामलों में वह लगभग होता ही नहीं, जब कि आस्ट्रेलियाई आदिवासियों, मेलानेशियाइयों और पापुआइयों का शरीर रोम प्रचुर होता है। नीग्रो लोगों के सिर का बाल पापुआइयों या मेलानेशियाइयों के बाल से कहीं अधिक ज़ोर से कुंडलित होता है, जिनके बच्चे लहरीले बालों के साथ पैदा होते हैं। आस्ट्रेलियाइयों के बाल बड़ी उम्र में भी लहरीले होते हैं।



चित्र ४५. सोलोमन द्वीपसमूहवासी मेलानेशियाई
(विषुवतीय महाप्रजाति की ओशेनियाई शाखा)

अफ़्रीकी नीग्रो का माथा सीधा और सुविकसित ललाट उभारोंवाला होता है, इंडोनेशियाई आस्ट्रेलाभों का मध्यम ढलवां और आस्ट्रेलियाई आदिवासियों का ख़ासा ढलवां। आस्ट्रेलियाइयों के भ्रू-चाप आम तौर पर बहुत विकसित होते हैं; अफ़्रीकी नीग्रो लोगों के भ्रू-चाप मुश्किल से ही दिखाई देते हैं। अफ़्रीकी लोगों ने प्रकटतः माथे की आकृति में आस्ट्रेलाभों की अपेक्षा अपने पूर्वजों से अधिक विचलन किया है। नाक के विकास ने उलटा ही रास्ता लिया है – अफ़्रीकी नीग्रो लोगों के आम तौर पर चपटी नाक होती है, जब कि सीधी या उत्तल नाक पूर्वी नीग्रोसमों की लाक्षणिक है, यद्यपि कुछ मेलानेशियाइयों की नाक अवतल होती है।

6*

इस प्रकार नीग्रोसमों और आस्ट्रेलाभों के बीच अंतर मुख्यतः बाल, ललाट, भ्रू-चापों और नाक की आकृति के बारे में ही है। समान लक्षणों के प्राबल्य के दृष्टिगत ये अंतर कोई बहुत अधिक नहीं हैं। इनका कारण संभवतः नीग्रोसम और आस्ट्रेलाभ लघु प्रजातियों के ऐसे प्रदेशों में विकास के अलग-अलग रास्ते हों, जो अत्यधिक भिन्न-भिन्न और एक-दूसरे से बहुत-बहुत अधिक दूर हैं।

यह बहुत संभव लगता है कि उत्तर-पुरापाषाण काल के प्रारंभ में आस्ट्रेलाभ-नीग्रोसम प्ररूपों का मूल समूह दक्षिण एशिया में कहीं, हिंदचीन, भारत या और भी पश्चिम में रहता था और बाद में वह पश्चिमी तथा पूर्वी शाखाओं में विभक्त हो गया, जो एक-दूसरे से संपर्क गंवा बैठीं।

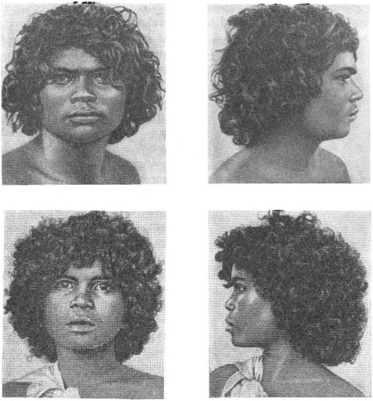
अगर हम सुदूर अतीत में, कोई ५०,००० साल या उससे भी ज्यादा पहले, ऐसी एक पैतृक विषुवतीय प्रजाति का होना मान लें, तो विभेदित प्रजातीय समूहों के पहले मुख्यतः दो दिशाओं – दक्षिण-पूर्वी अथवा ओशेनियाई और पश्चिमी – में और बाद में दक्षिण-पश्चिम की, अफ़्रीका की ओर प्रसार की कल्पना करना आसान है।

प्रसार के साथ-साथ स्थायीकृत प्रजातीय प्ररूपों में परिवर्तन आये और नये प्ररूपों का विभेदीकरण हुआ। नीग्रोसमों में बालों की घनी लहरें कुंडलाकार घुंघरों में विकसित हो गईं, शरीर रोम विलुप्त होने लगा, माथा सीधा हो गया, भ्रू-चाप कम हो गये और कुछ प्ररूपों में नाक सीधी हो गई। जैसे कि कल्पना की जा सकती है, यह एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया थी, जिसकी हम अभी विस्तार में व्याख्या नहीं कर सकते, क्योंकि उसके लिए पर्याप्त मानववैज्ञानिक तथा पुरातात्विक सामग्री उपलब्ध नहीं है।

हम फिर कहते हैं कि पश्चिमी (अफ़्रीकी) तथा पूर्वी (ओशेनियाई) नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभों के प्रजातीय लक्षणों का सादृश्य उनके बंधुत्व और सामान्य उद्गम का प्रमाण है।

अफ़्रीकी नीग्रोसम जनों के आस्ट्रेलाभ प्ररूपों से स्वतंत्र विकास के समर्थन में प्रायः दो तर्क दिये जाते हैं।

पहला नीग्रोसमों तथा आस्ट्रेलाभों द्वारा अधिकृत प्रदेशों के बीच बड़ी दूरी का होना है। लेकिन जब हम पूर्वी अफ़्रीका में निवास करनेवाली इथियोपियाई जाति और भारतवासी द्रविड़ों तथा वेद्दाह जनों (चित्र ४६ तथा प्लेट ५) का, मानववैज्ञानिक दृष्टि से एक-दूसरे के ख़ासे निकट दो समूहों का, स्मरण करते हैं, तो इस तथ्य की कुछ सार्थकता जाती रहती है। नीग्रोसम तथा आस्ट्रेलाभ प्रजातियों के बीच फ़ासले को श्यामवर्ण जनों के इन घनिष्ठतः संबद्ध जनों के बीच आनुवंशिक अंतरों के प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

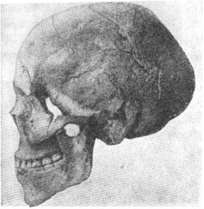


चित्र ४६. वेद्दाह पुरुष (ऊपर) तथा स्त्री (नीचे)
(विषुवतीय महाप्रजाति की श्रोशेनियाई शाखा)

अफ़्रीकी नीग्रोसमों के स्थानिक ग्राविर्भाव के पक्ष में प्रस्तुत दूसरा तर्क पुरामानववैज्ञानिक (palaeo-anthropological) स्रोतों पर ग्राधारित है; यह अफ़्रीकी महाद्वीप पर फ़ासिल मानव के कंकालावशेषों को ग्रत्यधिक पुरातनता प्रदान करता है और उनमें नीग्रोसम लक्षण देखता है।

प्राचीन नीग्रो लोगों के कंकालावशेष अपेक्षाकृत हाल के समय में मिले

हैं। सहारा मरुस्थल की गहराई में, ग्रस्सेलर* नामक फ़ौजी चौकी के पास, ग्रभिनूतनयुगीन निक्षेपों में एक लगभग पूरा ग्रश्मीभूत कंकाल मिला है, जो प्ररूप में नीग्रोसम है (चित्र ४७)। तथापि यह कंकाल उत्तर-पुरापाषाण युग के उत्तरवर्ती (मग्दाली – Magdalenian) काल का है। इस कंकाल के हिसाब से ग्रस्सेलर



चित्र ४७. ग्रस्सेलर, सहारा से प्राप्त नीग्रोसम प्ररूप का कपाल (१६२७)

मानव क़द में १७० सेंटीमीटर से कम नहीं था; उसके कपाल की धारिता लगभग १५०० घन सेंटीमीटर थी ग्रौर कपाल सूचकांक ७०.६ (दीर्घकपाल) था।

नीग्रोसम कपाल की एक ग्रौर रोचक खोज पूर्वी ग्रफ़्रीका में नाइवशा के निकट १६३६ में हुई थी। तथापि यह कपाल भी इतना पुराना नहीं है कि उसे नीग्रोसम

* टिंबकटू के लगभग ४०० किलोमीटर उत्तर-पूर्व ग्रौर एल-मग्रूक के लगभग २०० किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में।

मानववैज्ञानिक प्ररूपों के इथिओपियाई समूह के सबसे निकट हैं। इन खोजों की भौगोलिक स्थिति यह इंगित करती प्रतीत होती है कि दक्षिण एशियाई प्राचीन नीग्रोसम प्रजाति के लोग अफ़्रीका के पश्चिम और दक्षिण की ओर, अरब प्रायद्वीप से अफ़्रीका, सोमालीलैंड की तरफ़ आ गये थे। दक्षिण एशियाई नीग्रोसमों के इस पश्चिमाभिमुख प्रवास का एक और संभाव्य चिह्न शुक्बाह की गुफाओं और कार्मेल पर्वत पर कई दर्जन कंकालों की खोज है। ये उन लोगों के कंकाल हैं, जो उत्तर-पुरापाषाण (अथवा मध्यपाषाण) काल में रहते थे।

अस्सेलर-कंकाल अपने संरचनात्मक लक्षणों के दृष्टिगत पूर्वी तथा पश्चिमी नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभों के बंधुत्व का प्रमाण है। उत्तर-पूर्वी अफ़्रीका, पश्चिमी एशिया, भारत और इंडोनेशिया होते हुए आस्ट्रेलिया तक जानेवाली मेखला की आबादी की प्राचीन काल से आज तक की विशिष्टता नीग्रोसम तथा आस्ट्रेलाभ प्रजातीय लक्षणों का अंतर्गुंथन रही है; ऐसे निश्चित चिह्न है– यद्यपि कभी-कभी वे मुश्किल से ही गोचर होते हैं,–जो अफ़्रीकी तथा ओशेनियाई शाखाओं के बंधुत्व की ओर, अर्थात नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ बंधुत्व की ओर इंगित करते हैं।

विषुवतीय प्रजाति का एक विशिष्ट लक्षण उसकी संरचना में पिग्मियों की उपस्थिति है; ये बौने मानववैज्ञानिक प्ररूप यूरोपाभ और मंगोलाभ–दोनों ही–महाप्रजातियों में अविद्यमान हैं। अफ़्रीकी पिग्मी नीग्रील्लो और ओशेनियाई पिग्मी नीग्रीटो कहलाते हैं (दोनों ही "नीग्रो" शब्द से निकले हैं)।

पिग्मियों का उद्‌गम प्रजातियों और मानवोत्पत्ति, दोनों समस्याओं के अध्ययन के लिए बड़ी दिलचस्पी का है।

पिग्मियों के उद्‌गम के प्रश्न के बारे में प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी मानवविज्ञानियों में बहुत पुराना विवाद है।

प्रतिक्रियावादी मानवविज्ञानी पिग्मियों में सबसे पुरातन प्रजाति को, "निम्नों में भी निम्नतम" प्रजाति को, एक लगभग वानर जैसी प्रजाति को देखते हैं, जिसका निर्मूल होना अटल है।

इस दृष्टिकोण का सोवियत मानवविज्ञानियों ने विशेष विश्लेषण किया है; इसके अवैज्ञानिक चरित्र और प्रतिक्रियावादी प्रकृति का पूरी तरह से परदाफ़ाश किया जा चुका है। पश्चिमी और पूर्वी–दोनों–पिग्मी समूहों में बहुत जीवनक्षमता है, वे ह्रास के कोई चिह्न नहीं दर्शाते और जीववैज्ञानिक दृष्टि से मानववैज्ञानिक प्ररूपों के किसी भी अन्य समूह के बराबर हैं; वे तीव्र और पूर्ण सांस्कृतिक विकास कर सकते हैं।

सोवियत मानवविज्ञानी अन्य देशों के कुछ विद्वानों की उस परिकल्पना का भी खंडन करते हैं, जो पिग्मियों को समस्त मानवजाति का पूर्वज मानती है। प्राचीनतम मनुष्य वस्तुतः पिग्मियों से अधिक ऊंचे थे (साइनेंथ्रोपस का क़द १५२ से १६३ सेंटीमोटर और पिथिकेंथ्रोपस का लगभग १७० सेंटीमीटर था)। निएंडरथल भी पिग्मियों से लंबे थे, उनका औसत क़द १६० सेंटीमोटर था। इसलिए पिग्मी मानव-विकास की पहली या दूसरी मंजिल के अवशेष नहीं हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन लोगों का नाटापन एक परवर्ती लक्षण है, एक ऐसा लक्षण है, जो आंशिक और स्थानीय है, क्योंकि यह केवल एक ही मानव-महाप्रजाति में देखने में आता है, न कि सब में। दूसरे शब्दों में, ऊंचे क़द के अन्य लोगों की तरह पिग्मी भी संबद्ध मानववैज्ञानिक प्ररूपों के प्रतिनिधियों से उत्पन्न हुए हैं, जो औसत क़द के थे।

हम नीग्रील्लो लोगों* के लक्षणों के साथ आरंभ करेंगे, जिन्हें मानव-वैज्ञानिक प्ररूपों के मध्य अफ़्रीकी अथवा पिग्मी समूह में संयुक्त किया जाता है (देखिये प्लेट ६)।

नीग्रील्लो का औसत क़द १५० सेंटीमोटर से अधिक नहीं होता। कुछ क़बीलों में तो वयस्क पुरुष का क़द १४० सेंटीमीटर और स्त्री का १३० या १२५ सेंटीमोटर ही होता है। सभी पुरुषों के दाढ़ी नहीं होती; कुछ क़बीलों में तृतीयक शरीर रोम अल्प-विकसित होता है, तो और क़बीलों में उसका मध्यम विकास होता है। सिर अपेक्षाकृत बड़ा होता है और मध्यशीर्ष होता है; चेहरा नीचा, मगर गोल व ऊंची नेत्रगुहाओं के साथ होता है। आंखें कत्थई होती हैं, होंठ मध्यम मोटाई के या पतले तक होते हैं; नाक चपटी होती है और सेतु नीचा या मध्यम होता है। छोटी टांगों की तुलना में धड़ लंबा ही होता है; हाथ का कंकाल पतली हड्डियों से बना है। समूचे तौर पर नीग्रील्लो अपने नीग्रो पड़ोसियों से बहुत मिलते हैं; उनकी त्वचा आम तौर पर गहरी वर्णयुक्तता की होती है, बाल घुंघरों में होते हैं, नाक बहुत चौड़ी होती है और माथा उत्तल होता है।

---

* नीग्रील्लो विषुवतीय अफ़्रीका की मध्यवर्ती पट्टी में, घने उष्ण कटिबंधीय जंगलों में रहते हैं। पूर्वी नीग्रील्लो जनों यानी बंबुतियों का निकास इतूरी प्रदेश में है, मध्यवर्ती समूह – बातुआ – कांगो प्रदेश में, और पश्चिमी समूह – बाबिंगा – उस इलाके में, जो पहले फ़्रांसीसी विषुवतीय अफ़्रीका का भाग था, और कैमरून में भी रहता है।

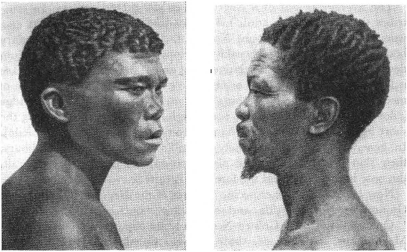
अब हमें न्यू गिनी, न्यू हेब्राइड तथा कुछ अन्य द्वीपों पर रहनेवाले नीग्रीटो लोगों के विशिष्ट लक्षणों की ओर देखना चाहिए।

न्यू गिनी के नीग्रीटो जनों का एक समूह मेलानेशियाइयों से, उदाहरण के लिए न्यू कैलेडोनियावालों से, अधिक सादृश्य रखता है। उनका क़द १५०–१५२ सेंटीमीटर होता है। दूसरा समूह पापुआइयों के अधिक निकट है, लेकिन नाक ज्यादा चौड़ी है; इसके अलावा वे मध्यशीर्ष होते हैं, जब कि पापुआई दीर्घशीर्ष हैं। ये नीग्रीटो अधिक नाटे होते हैं – पुरुषों का क़द १४४ सेंटीमीटर ही होता है; उन्हें पापुआई समूह का एक स्थानीय रूपांतर माना जा सकता है।

ओशेनियाई मानववैज्ञानिक प्ररूपों के अन्य समूह भी हैं, जो न्यू गिनी के नीग्रीटो लोगों से सादृश्य रखते हैं: अंदमान द्वीपों के निवासी, फ़िलीपीन में लूज़ोनवासी आएता और मलक्का प्रायद्वीप के सेमांग (देखिये प्लेट ६)। कुछ विद्वान इन सभी नीग्रीटो जनों को एक ही मानववैज्ञानिक प्ररूप-समूह में रखते हैं। तथापि ये सभी समूह भिन्न-भिन्न उद्गम के हैं और जिन इलाक़ों में वे निवास करते हैं, वे बहुत दूर-दूर हैं; उन्हें मुश्किल से ही एक एकल समूह माना जा सकता है। हमें इस तथ्य पर ज़ोर देना होगा कि हिंदचीन के सेनोग्रा लोग, जिनका औसत क़द १५४ सेंटीमीटर है, प्रजातीय लक्षणों में वेद्दाहों के बहुत समान हैं; उनके चौड़ी नाक, पीली-भूरी, कभी-कभी गहरी भूरी त्वचा होती है और उनके सिर के बाल लंबे और लहरीले होते हैं।

यह मत यथेष्ट सारवान है कि न्यू गिनी के नीग्रीटों का मेलानेशियाइयों और पापुआइयों से बंधुत्व है। कम से कम एक तथ्य इसका इंगित करता है: न्यू गिनी के टापीरो पिग्मी द्वीप के उत्तर में रहनेवाले अयप क़बीले से संबंधित हैं, जिसके क़द का औसत १६० सेंटीमीटर है; एक समूह से दूसरे में संक्रमण क्रमिक है और शायद ही नज़र आता है। नाटे क़द के अन्य क़बीले भी पड़ोसी क़बीलों से उत्पन्न हुए अथवा उन समूहों के अवशेषों के उत्परिवर्तन प्रतीत होते हैं, जिन्होंने अतीत में किसी समय हिंदचीन या दक्षिण चीन से निकटवर्ती मलाया द्वीपसमूह के टापुओं पर होते हुए दक्षिण-पूर्व की ओर प्रवास किया था और रास्ते में धीरे-धीरे रुकते गये और बस गये, जहां वे पहाड़ों और जंगलों में पृथक हो गये।

नीग्रील्लों तथा नीग्रीटों द्वारा आबाद इलाके एक-दूसरे से १०,००० से १५,००० किलोमीटर के फ़ासले से अलग हैं। अगर इस सिद्धांत को मान लिया जाये कि वे किसी परिकल्पित बौनी प्रजाति से उत्पन्न हुए हैं, जो दक्षिण एशिया में



चित्र ४९. कालाहारी मरुस्थल के बुशमैन – युवा (बायें) और पुरुष (दायें)
(विषुवतीय महाप्रजाति की अफ़्रीकी शाखा)

किसी मध्यवर्ती क्षेत्र पर क़ाबिज़ थी, तो इतने व्यापक क्षेत्र पर वितरण की व्याख्या किस तरह की जा सकती है? आद्य-पिग्मी दक्षिण-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम को क्योंकर प्रवास कर सकते थे? इस प्रकार की कल्पना इस तथ्य से भी असत्य सिद्ध हो जाती है कि दक्षिण एशिया में बौने लोगों के कोई फ़ासिलावशेष नहीं मिले हैं।

अफ़्रीका में बुशमैन क़द में नाटे होते हैं और पिग्मियों के निकट हैं (चित्र ४९); वे एक अलग विशिष्ट प्रजातीय समूह का निर्माण करते हैं। ये बौने लोग (औसत क़द १५२–१५५ सेंटीमीटर) अंग्रेज़ उपनिवेशवादियों द्वारा लगभग पूरी तरह से ख़त्म कर दिये गये हैं, केवल कुछ हज़ार बुशमैन कालाहारी के सूखे घास-मैदानों में और उससे भी पश्चिम, ओरेंज तथा कूनेने नदियों के बीच नूमीब मरुस्थल में बचे हुए हैं।

अपने नाटे क़द के अलावा बुशमैनों में पिग्मियों जैसे अन्य लक्षण भी विद्यमान हैं – अपेक्षाकृत छोटी टांगें (धड़ की तुलना में), ख़ासा बड़ा सिर, चपटा और बहुत नीचा चेहरा, सीधा, नीचा माथा, अल्प-विकसित भ्रू-चाप, निकली हुई गंडास्थियां, नीचे सेतु और चौड़े नथनोंवाली नाक और अल्प-विकसित चिबुक (देखिये प्लेट ६)।

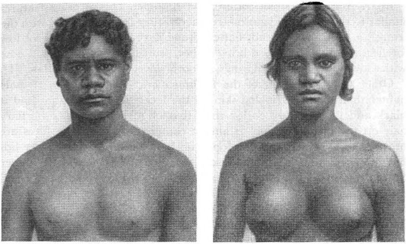
बुशमैनों के अन्य प्रारूपिक लक्षण हैं: पीताभ त्वचा (स्त्रियां पुरुषों से हलके रंग की होती हैं); चहरे पर झुर्रीदार खाल; सिर के बाल काले और अफ़्रीकी नीग्रो लोगों से अधिक कड़े कुंडलोंवाले होते हैं; चेहरे और शरीर पर तृतीयक रोम लगभग बिलकुल नहीं होता, आंखें फत्यई होती हैं और ऊपरी तथा निचली – दोनों – पलकों पर वलियां सुविकसित होती हैं, लेकिन] अधिनेत्र-कोण प्रायः नहीं होता; होंठ मोटे होते हं और ऊपरी होंठ निकला हुआ होता है; कर्णपालियां (earlobes) सिर की त्वचा से जुड़ी हुई होती हैं और लटकी हुई नहीं होतीं।

त्वचा का रंग, पलकों की वलियां और कुछ चपटा चेहरा बुशमैनों को मंगोलाभों के कुछ-कुछ सदृश बना देता है, किंतु उनसे वे संबंधित नहीं हैं। बुशमैन की पलक की वली बनावट में मंगोलाभों की वली से भिन्न होती है। यह सादृश्य शुद्धतः आकारिक है और निस्संदेह मरुस्थलीय इलाक़ों में जीवन की समान अवस्थाओं के कारण है।

बुशमैनों के अधिकांश प्रजातीय लक्षण उन्हें सूडानी (या वास्तविक नीग्रो) प्ररूप-समूह से संबंधित कर देते] हैं, बुशमैन प्रकटतः उसका हलके रंग की त्वचा और नाटे क़दवाला एक उत्परिवर्तन है। यह मत कि वे नीग्रोसम उद्‌गम के हैं, नितंबों पर वसीय ऊतक के संचय (steatopygia) से खंडित नहीं होता, जो अन्य अफ़्रीकी मानववैज्ञानिक प्ररूपों – मिसाल के लिए, सोमाली प्रायद्वीप के क़बीलों – में भी पाया जानेवाला लक्षण है। बुशमैनों के पड़ोसी, होटंटोट लोगों में यह लक्षण सर्वाधिक विकसित होता है।

बुशमैनों तथा नीग्रो जनों में संबंध के बारे में मानववैज्ञानिक तथ्य-सामग्री की पुरातात्विक तथ्य-सामग्री अनुपूर्ति करती है। सारे दक्षिणी अफ़्रीका और पूर्वी अफ़्रीका के कुछ भागों में पाये जानेवाले पशुओं और मनुष्यों के रेखाचित्र और उत्कीर्णन बुशमैनों के रेखाचित्रों के बहुत समान हैं। इससे यह पता चलता है कि बुशमैन किसी समय अफ़्रीका में बहुत व्यापक पैमाने पर फैले हुए थे और उस महाद्वीप की आबादी के सबसे पुराने समूहों में एक हो सकते हैं।

पुरामानववैज्ञानिक तथ्य-सामग्री भी बुशमैनों तथा नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ प्रजातियों में संबंध की पुष्टि करती है। केप फ़्लैट्स (केपटाउन के निकट) में उत्खनित और १९२९ में वर्णित एक खोपड़ी दीर्घशीर्ष है, ढलवां माथे और सशक्त भ्रू-चापों के साथ है; नाक चौड़ी है; उसके स्वामी का क़द लगभग १६८ सेंटीमीटर कूता गया है।



चित्र ५०. क्वींसलैंड-निवासी आस्ट्रेलियाई आदिवासी – युवक (बायें) और युवती (दायें)
(विषुवतीय महाप्रजाति की ओशेनियाई शाखा)

इसलिए बुशमैन निस्संदेह अफ़्रीकी नीग्रोसम प्रजाति का ही अंग हैं। उनकी स्थिति कुछ पृथक प्रतीत हो सकती है, किंतु यह तो इसी का और प्रमाण है कि उद्गम-संबंध सदा शुद्धतः बाह्य लक्षणों द्वारा ही व्यक्त नहीं होते।

इसे उन मानववैज्ञानिक प्ररूप-समूहों का अध्ययन करते समय विशेषकर ध्यान में रखना चाहिए, जो आस्ट्रेलाभ प्रजाति का निर्माण करते हैं, जिनमें आस्ट्रेलियाई समूह सबसे प्रारूपिक है। आस्ट्रेलिया के मूल निवासी एशियाई मुख्य भूमि से बहुत दूर, एक अपेक्षाकृत छोटे और विपन्न महाद्वीप पर बहुत लंबे भौगोलिक पार्थक्य की अवस्थाओं के अंतर्गत विकसित हुए।

आस्ट्रेलियाई आदिवासियों के प्रजातीय लक्षण, समूचे तौर पर, दिखाते हैं कि वे नीग्रोसम प्ररूप से सबसे निकट रूप में संबंधित हैं, यद्यपि उनके लहरीले बालों, सुविकसित मुख तथा शरीर रोम और अनेक अन्य विशिष्ट लक्षणों से यह सोचा जा सकता है कि उनका यूरोपाभ प्ररूपों से कोई सुदूर संबंध हो सकता है। यह मानना अधिक सही होगा कि ये लक्षण, आइनू (कुरील द्वीपवासियों) के

घने शरीर रोम की भांति, उद्गम-संबंध के बिना विकसित हुए हैं।

आस्ट्रेलियाई (चित्र ५०) अन्य आस्ट्रेलाभ समूहों से पृथक नहीं हैं। उनका कुछ मेलानेशियाइयों (देखिये प्लेट ७) से, मिसाल के लिए न्यू कैलेडोनियाइयों से, जिनके सुविकसित शरीर रोम और सिर पर ऐसे बाल होते हैं, जो लहरीले के निकट हैं, सबसे प्रबल सादृश्य है। आस्ट्रेलियाई आदिवासियों के समान अन्य समूह और अधिक उत्तर-पश्चिम में, ठेठ भारत और श्रीलंका तक में मिल सकते हैं, जहां आस्ट्रेलियाइयों के समान मानववैज्ञानिक समूह – वेद्दाह और द्रविड़ – रहते हैं। यह देखना रोचक है कि द्रविड़ों में ऐसे अनेक लक्षण हैं, जो इथिओपियाई प्ररूप-समूह के लक्षणों जैसे हैं। इस प्रकार यूरोपाभों से लेकर केवल अफ़्रीकी नीग्रोसमों तक ही नहीं, बल्कि भारत के जरिये ओशेनियाई आस्ट्रेलाभों तक भी फैली एक प्रत्यक्षतः बहुत ही प्राचीन आनुवंशिक संबंध है।

यह संभव है कि श्रीलंका के वेद्दाह जैसे प्ररूप-समूहों ने पाषाण युग के अंत के निकट दक्षिण-पूर्वी एशिया में रूप ग्रहण किया हो। इसकी किसी हद तक हिंदचीन और इंडोनेशिया में अस्थ्यावशेषों की खोज से पुष्टि होती है।

१९३६ में उत्तरी हिंदचीन में प्राप्त एक मध्यपाषाणकालीन खोपड़ी का विवरण दिया गया था; लाओस में तांपोंग में कंकाल के साथ एक स्त्री की खोपड़ी मिली थी, जो प्रकटतः कोई ५००० साल पुरानी है। यह खोपड़ी तीनों महाप्रजातियों के लक्षणों का अद्भुत संयोग दिखाती थी, लेकिन उसके सबसे प्रबल लक्षण आस्ट्रेलाभ और दक्षिण मंगोलाभ हैं।

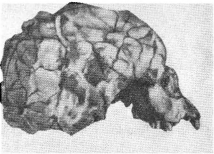
गूवा लावा (जावा) में प्राप्त नवपाषाणकालीन खोपड़ियां आस्ट्रेलियाई तथा पापुआई खोपड़ियों की याद दिलानेवाली अधिक हैं।

एशियाई महाद्वीप का दक्षिण-पूर्वी कोना बहुत करके आस्ट्रेलियाई तथा मेलानेशियाई – दोनों – प्ररूप-समूहों का मूल आवास था। हिंदचीन से आस्ट्रेलियाइयों के पूर्वज, संभवतः उत्तर-पुरापाषाण काल में, प्रयास करके मोलाक्का द्वीपसमूह, सेरांग और न्यू गिनी होते हुए आस्ट्रेलिया पहुंचे, या हो सकता है कि उन्होंने जावा, सेलीबीज और तीमोर के जरिये उस महाद्वीप के उत्तर-पूर्वी समुद्रतट पर पहुंचने का अधिक दक्षिणवर्ती रास्ता लिया हो।[३१]

पूर्वी आस्ट्रेलिया के उर्वर भागों में फैलते समय वे संभवतः टस्मानियाई मानववैज्ञानिक प्ररूपों के प्रतिनिधियों से मिले, जो उनके पहले आस्ट्रेलिया में पहुंचे थे और जिनमें से कुछ बास जलडमरूमध्य को पार करके टस्मानिया पहुंच भी चुके थे।

इस कल्पना का किसी हद तक फ़ासिल रूपों की खोजों से समर्थन होता है। टलगाई में मिली एक खोपड़ी (चित्र ५१) किसी १४–१६ साल के किशोर की है; कोहूना में प्राप्त एक और खोपड़ी किसी वयस्क की थी। उनकी भूवैज्ञानिक तिथि हिमयुग के लगभग अंत की है। वे केवल अपनी आकृति में ही नहीं, बल्कि अपनी अल्प धारिता में भी, जिसका आधुनिक आस्ट्रेलियाई आदिवासियों के मनुष्यों में औसत १३०० घन सेंटीमीटर है, आस्ट्रेलियाइयों की खोपड़ियों से मिलती हैं।

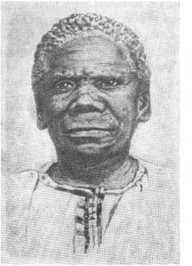
एक वयस्क की अधिक संपूर्ण खोपड़ी कीलोर (मेलबोर्न के निकट) में मिली थी। भूवैज्ञानिक तिथि से यह हिमयुग की, अंतिम हिमाच्छादन के समय की है। इस खोपड़ी की आकृति और बड़ी धारिता (१५६० घन सेंटीमीटर) इसे अन्य दोनों आस्ट्रेलियाई खोपड़ियों से अत्यंत भिन्न बना देती हैं; यह डच वैज्ञानिक एजेन दुबुआ (जिन्होंने बाद में पियिकेंथ्रोपस को खोजा था) द्वारा जावा में वद्याक गांव के निकट १८६० में खोजी दो खोपड़ियों से अधिक मिलती हैं; इन दोनों में अधिक संरक्षित खोपड़ी (पुरुष की) के कपाल की धारिता १६५० घन सेंटीमीटर थी।



चित्र ५१. टलगाई
(आस्ट्रेलिया) से प्राप्त खोपड़ी
(१८८४)

वद्याक खोपड़ियां प्रकटतः टस्मानियाइयों के पूर्वजों की थीं और इस सिद्धांत की पुष्टि करती हैं कि ओशेनियाई प्रजाति बहुत प्राचीन काल में आस्ट्रेलिया पहुंच गई थी। (यह इस तथ्य के भी संगत है कि आस्ट्रेलियाई महाद्वीप के दक्षिण-पूर्वी कोने पर अन्य तटवर्ती प्रदेशों की अपेक्षा बहुत बाद में पहुंचे।)

मानववैज्ञानिक प्ररूपों का टस्मानियाई समूह आस्ट्रेलियाई समूह से कम रोचक नहीं है। अभाग्यवश आज एक भी टस्मानियाई ज़िंदा बाक़ी नहीं है। १६४२ में टस्मानिया की खोज के समय उसकी जनसंख्या लगभग १५,००० थी। १८३४ तक ५००० टसमानियाई ही बाक़ी रहे। अंग्रेज फ़ौजों ने उन सबका सफ़ाया कर दिया। अंतिम टस्मानियाइयों को अंग्रेज़ों ने फ़्लिंडर्स द्वीप पर भेज दिया था, जहां





चित्र ५२. टस्मानियाई स्त्रियां – त्रुगानीनी (बायें) और पंटी-मो-कूनोना
(विषुवतीय महाप्रजाति की ओशेनियाई शाखा)

वे समाप्त हो गये। उनमें से अंतिम, त्रुगानीनी, (चित्र ५२) का देहांत १८७६ में हुआ था। यह हाल ही में खोजा गया है कि टस्मानियाइयों का एक और समूह एक अन्य द्वीप पर पहुंचा था, जहां उनमें से अंतिम का देहांत कुछ बाद में, १८६३ में हुआ। अनेक टस्मानियाइयों को आस्ट्रेलिया के दक्षिणी तट पर ले जाया गया, जहां वे आस्ट्रेलियाई आदिवासियों के साथ और यूरोपीयों के साथ सम्मिश्रित हो गये (चित्र ५३)।

टस्मानियाई मानववैज्ञानिक प्ररूप का आज केवल विवरणों, चित्रों, मूर्तियों, खोपड़ियों तथा अन्य अवशेषों से ही अनुमान लगाया जा सकता है। उनके सिर के बाल घुंघराले थे। चेहरा बहुत नीचा था, आंखें अपनी गुहाओं में गहरी घुसी हुई थीं, जिनका ऊर्ध्व व्यास बहुत अधिक नहीं था; नथने से नीचे की ओर जानेवाली वली बहुत प्रमुख थी, मुख्यतः इसलिए कि ऊपरी होंठ का त्वचीय भाग फूला हुआ सा और काफ़ी उठा हुआ था। ये लक्षण टस्मानियाइयों को अपना एक विशिष्ट रूपरंग प्रदान कर देते हैं। कपाल तोरण बहुत ऊंचा नहीं था, किंतु कपाल की धारिता का औसत १४०० घन सेंटीमीटर था, जो ख़ासी बड़ी है।



चित्र ५३. यूरोपीयों तथा टस्मानियाई स्त्रियों के बीच विवाहो की संतानें

उपरिवर्णित लक्षण हमें यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि टस्मानियाई लोग आस्ट्रेलियाई आदिवासियों से बहुत भिन्न थे।

टस्मानियाई आस्ट्रेलिया बहुत प्राचीन काल में, आस्ट्रेलियाइयों से बहुत पहले, पहुंचे और संभवतः पूर्वी तट के साथ-साथ बढ़े, जहां ज़मीन अधिक उर्वर है और,



चित्र ५२. टस्मानियाई स्त्रियां–त्रुगानीनी (बायें) औ
(विषुवतीय महाप्रजाति की ओशेनियाई शाट

वे समाप्त हो गये। उनमें से अंतिम, त्रुगानीनी, (चित्र ५
में हुआ था। यह हाल ही में खोजा गया है कि टस्मानिया
एक अन्य द्वीप पर पहुंचा था, जहां उनमें से अंतिम का दे
में हुआ। अनेक टस्मानियाइयों को आस्ट्रेलिया के दक्षिण
जहां वे आस्ट्रेलियाई आदिवासियों के साथ और यूरो
गये (चित्र ५३)।

टस्मानियाई मानववैज्ञानिक प्ररूप का आज केव
खोपड़ियों तथा अन्य अवशेषों से ही अनुमान लगा
के बाल घुंघराले थे। चेहरा बहुत नीचा था, भा
हुई थीं, जिनका ऊर्ध्व व्यास बहुत अधिक नह
जानेवाली बलो बहुत प्रमुख थी, मुख्यतः इस
भाग फूला हुआ सा और काठी उठा हुआ था
एक विशिष्ट रूपरंग प्रदान कर देते हैं। कपा
कपाल की धारिता का औसत १४०० घन

अधिक सीमा तक नहीं – जुड़े हुए थे; यह महाद्वीप के भीतरी भागों में रहनेवालों और दक्षिणी भाग में रहनेवालों – दोनों – ही के बारे में सच था। अगर हम यह मान लेते हैं कि प्राचीन मंगोलाभ दक्षिण और दक्षिण-पूर्व से एशिया के उत्तर-पूर्वी भागों की तरफ़ फैले, तो हमें इस विचार का और भी समर्थन मिलता है कि मंगोलाभों और यूरोपाभों तथा आस्ट्रेलाभों, दोनों, के बीच गहन और प्राचीन बंधुत्व था। इसके दृष्टिगत उत्तर एशिया में उराल (उराल-लाप) और दक्षिण साइबेरियाई संपर्क-समूहों के निर्माण को एक उत्तरवर्ती प्रक्रिया मानना होगा, जो इन प्रदेशों के हिम-मुक्त होने के बाद हुई थी।

आद्य-मंगोलाभों का प्रजातीय प्ररूप क्या था? क्या पीताभ-भूरी त्वचा दक्षिणवर्ती प्रदेशों में रहनेवाले पूर्वजों की गहरे रंग की खाल के किसी हद तक वर्णकहरण का परिणाम नहीं है?

अंतिम प्रश्न का उत्तर संभवतः हां है। जहां तक मूल प्रजातीय प्ररूप का संबंध है, तो आद्य-मंगोलाभों में संभवतः वे विशिष्ट लक्षण नहीं थे, जो आज मंगोलाभों की विशेषता हैं। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि आधुनिक मंगोलाभों में चेहरे, नाक और आंखों की कुछ विशिष्टताओं ने बाद में रूप ग्रहण किया। चमड़ी के नीचे के वसा ऊतक के स्थानीय स्थूलीकरण के साथ गंडास्थियों का शक्तिशाली विकास, आंखों का बिलकुल अनुप्रस्थ स्थिति में न होना, क्योंकि बाहरी कोण भीतरी कोणों से कुछ ऊंचे होते हैं, और अधिनेत्र-कोण की उपस्थिति जैसे लक्षण सभी मंगोलाभ प्ररूपों में स्पष्टतः सीमांकित नहीं हैं। उदाहरण के लिए, अधिनेत्र-कोण कुछ मंगोलाभ समूहों में केवल कुछ प्रतिशत लोगों में ही पाया जाता है, जब कि येनीसेई क्षेत्र के केत जनों और अमरीकी इंडियनों में यह बहुत ही विरल है।

यह संभव है कि मंगोलाभों में अधिक विशिष्ट लक्षण-समष्टि ने स्तेपी और रेगिस्तानी इलाक़ों की अवस्थाओं के अंतर्गत प्रकृति के प्रति एक प्रतिरक्षात्मक अनुकूलन के रूप में विकास किया। इस मत का औरों के साथ स० अ० सेम्योनोव समर्थन करते हैं।[40] संकरे नेत्र-विदर और उसकी कम लंबाई को (जो ऊपरी पलक पर अधिनेत्र-कोण के साथ अति-विकसित वली का परिणाम है) सेम्योनोव मंगोलाभ प्रजाति के मूलस्थान में महाद्वीपीय जलवायु की अवस्थाओं के प्रति वास्तविक अनुकूलन कहकर व्याख्या करते हैं। चक्रवाती सक्रियता, रेगिस्तानी इलाक़े, धूल और अन्य प्राकृतिक कारकों ने कई हज़ार साल मानव शरीर पर अपना प्रभाव डाला। इसमें एक कारक को और शामिल किया जाना चाहिए – लंबी सरदी के दौरान

7*

श्रंत में, जलडमरूमध्य को पार करके टस्मानिया पहुंच गये। वहां उन्होने द्वीप के पार्यक्य में हज़ारों साल शरण पाई, जब कि जो मुख्य भूमि पर रह गये थे, वे संभवतः श्रास्ट्रेलियाइयों द्वारा समाप्त कर दिये गये। यह संभव है कि कोलोर में प्राप्त प्राचीन खोपड़ी इस बात का प्रमाण है कि टस्मानियाई कभी देश के दक्षिण-पूर्वी कोने पर बसे हुए थे। किसी भी सूरत में टस्मानियाई लोग श्रोशेनिया के प्राचीनतम निवासियों में हैं।

कुछ लेखक इस मत के हैं कि श्राइनू (श्रथवा कुरील) प्ररूप-समूह भी श्रास्ट्रेलाभ प्रजाति का ही श्रंग है (देखिये प्लेट ७)।

जापान में श्राज रहनेवाले कुछ हज़ार लोगों के इस समूह ने विशेषज्ञों में कई विवाद पैदा किये हैं। कुछ मानवविज्ञानी श्राइनू लोगों के मंगोलाभ लक्षणों – हलकी, पीली त्वचा, श्रधिनेत्र कोण, जो उनमें से कई के होता है, चपटे श्रौर कुछ-कुछ निकले हुए चेहरे, भेदक दांत के गर्त्त के श्रल्प-विकास – की श्रोर श्रधिकतम ध्यान देते हैं।

श्रन्य मानवविज्ञानी श्राइनू लोगों के श्रास्ट्रेलियाई श्रादिवासियों से सादृश्य – सिर तथा शरीर पर बालों के घनेपन (सिर के बाल कड़े होते हैं), ढलवां माथे, मंगोलाभों से चौड़े नयनों श्रौर मोटे होंठों – पर ज़ोर देते हैं।

चाहे कोई भी दृष्टिकोण स्वीकार किया जाये, कुछ विदेशी विद्वानों की मान्यता के विपरीत श्राइनू लोग यूरोपाभ प्रजाति के नहीं हैं – ऐसे विद्वान भी हैं, जो पर्याप्त श्राधार के बिना पोलीनेशियाइयों तथा श्रन्य समूहों तक में यूरोपाभ लक्षण देखना चाहते हैं। श्राइनू जनों के विभिन्न शारीरिक लक्षणों के श्रापेक्षिक महत्व श्रौर साथ-साथ उनकी भाषा श्रौर संस्कृति की विशिष्टताश्रों, उनके सुदूर श्रतीत श्रौर दक्षिण से उनके प्रयास के दृष्टिगत सोवियत मानवविज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि श्राइनू मूलतः एक श्रास्ट्रेलाभ प्ररूप थे, जिसने दक्षिण-पूर्वी श्रौर पूर्वी एशिया के मंगोलाभों के साथ संमिश्रण द्वारा नये लक्षण प्राप्त कर लिये।

८. मंगोलाभ महाप्रजाति

जैसा कि हम कह चुके हैं, मंगोलाभों का मूल श्रावास बहुत करके एशिया के पूर्वार्ध में था। यह क्षेत्र पृथक्स्थ नहीं था; मंगोलाभ पहाड़ी दर्रों, घाटियों श्रौर तराइयों के ज़रिये यूरोपाभ श्रौर नीग्रोसम-श्रास्ट्रेलाभ महाप्रजातियों के साथ – चाहे बहुत

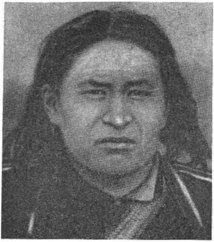
अधिक सीमा तक नहीं–जुड़े हुए थे; यह महाद्वीप के भीतरी भागों में रहनेवालों और दक्षिणी भाग में रहनेवालों–दोनों–ही के बारे में सच था। अगर हम यह मान लेते हैं कि प्राचीन मंगोलाभ दक्षिण और दक्षिण-पूर्व से एशिया के उत्तर-पूर्वी भागों की तरफ़ फैले, तो हमें इस विचार का और भी समर्थन मिलता है कि मंगोलाभों और यूरोपाभों तथा आस्ट्रेलाभों, दोनों, के बीच गहन और प्राचीन बंधुत्व था। इसके दृष्टिगत उत्तर एशिया में उराल (उराल-लाप) और दक्षिण साइबेरियाई संपर्क-समूहों के निर्माण को एक उत्तरवर्ती प्रक्रिया मानना होगा, जो इन प्रदेशों के हिम-मुक्त होने के बाद हुई थी।

आद्य-मंगोलाभों का प्रजातीय प्ररूप क्या था? क्या पीताभ-भूरी त्वचा दक्षिणवर्ती प्रदेशों में रहनेवाले पूर्वजों की गहरे रंग की खाल के किसी हद तक वर्णकहरण का परिणाम नहीं है?

अंतिम प्रश्न का उत्तर संभवतः हां है। जहां तक मूल प्रजातीय प्ररूप का संबंध है, तो आद्य-मंगोलाभों में संभवतः वे विशिष्ट लक्षण नहीं थे, जो आज मंगोलाभों की विशेषता हैं। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि आधुनिक मंगोलाभों में चेहरे, नाक और आंखों की कुछ विशिष्टताओं ने बाद में रूप ग्रहण किया। चमड़ी के नीचे के वसा ऊतक के स्थानीय स्थूलीकरण के साथ गंडास्थियों का शक्तिशाली विकास, आंखों का बिलकुल अनुप्रस्थ स्थिति में न होना, क्योंकि बाहरी कोण भीतरी कोणों से कुछ ऊंचे होते हैं, और अधिनेत्र-कोण की उपस्थिति जैसे लक्षण सभी मंगोलाभ प्ररूपों में स्पष्टतः सीमांकित नहीं हैं। उदाहरण के लिए, अधिनेत्र-कोण कुछ मंगोलाभ समूहों में केवल कुछ प्रतिशत लोगों में ही पाया जाता है, जब कि येनीसेई क्षेत्र के केत जनों और अमरीकी इंडियनों में यह बहुत ही विरल है।

यह संभव है कि मंगोलाभों में अधिक विशिष्ट लक्षण-समष्टि ने स्तेपी और रेगिस्तानी इलाक़ों की अवस्थाओं के अंतर्गत प्रकृति के प्रति एक प्रतिरक्षात्मक अनुकूलन के रूप में विकास किया। इस मत का औरों के साथ स० अ० सेम्योनोव समर्थन करते हैं।[40] संकरे नेत्र-विदर और उसकी कम लंबाई की (जो ऊपरी पलक पर अधिनेत्र-कोण के साथ अति-विकसित वली का परिणाम है) सेम्योनोव मंगोलाभ प्रजाति के मूलस्थान में महाद्वीपीय जलवायु की अवस्थाओं के प्रति वास्तविक अनुकूलन कहकर व्याख्या करते हैं। चक्रवाती सक्रियता, रेगिस्तानी इलाक़े, धूल और अन्य प्राकृतिक कारकों ने कई हज़ार साल मानव शरीर पर अपना प्रभाव डाला। इसमें एक कारक को और शामिल किया जाना चाहिए–लंबी सरदी के दौरान

7*



चित्र ५४. केत
(मंगोलाभ और यूरोपाभ महाप्रजातियों का संपर्क-समूह)

चमचमाती सफ़ेद बर्फ़, चट्टानों और दूसरी उज्ज्वल चीज़ों से परावर्तित प्रकाश (अलबीदो – albedo), जो आंख के विकास पर भी अपना प्रभाव डालता है।

मानव शरीर की समान परिस्थितियों में प्रतिरक्षात्मक अनुक्रिया के फलस्वरूप केवल मंगोलाभों ही नहीं, बल्कि नीग्रोसमों – दक्षिण अफ़्रीका के रेगिस्तानी इलाक़ों में रहनेवाले बुशमैनों – में भी आंख के लिए संरक्षी युक्तियों की उत्पत्ति हुई।

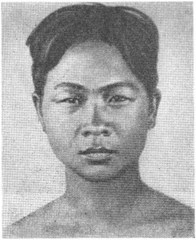
अतः एशियाई महाद्वीप के अंतस्थ भाग में मंगोलाभ प्रजाति की उत्तरी अथवा महाद्वीपीय शाखा (चित्र ५४ तथा ५५) का उदय हुआ, जो आज लगभग सारे आंतर एशिया और साइबेरिया पर – उनके अत्यधिक विविध मानववैज्ञानिक प्ररूपों के साथ – फैली हुई है। इन मानववैज्ञानिक प्ररूपों में वे अंतर्वर्ती अथवा संपर्क समूह सम्मिलित हैं, जो यूरोपाभों के साथ संमिश्रण के फलस्वरूप निर्मित हुए थे। मानवविज्ञानी मानववैज्ञानिक प्ररूपों के चारित्रिक साइबेरियाई और मध्य एशियाई समूहों का विभेद करते हैं (उदाहरण के लिए, एवेंक, देखिये प्लेट ८)। उत्तरी से दक्षिणी मंगोलाभों में संक्रमण दो समूहों – सुदूर पूर्वी अथवा पूर्वी एशियाई (उत्तरी चीनी, मंचूरियाई, कोरियाई तथा अन्य) और आर्कटिक (चुक्ची – देखिये प्लेट ८ – और एस्कीमो) के जरिये है।

मंगोलाभ प्रजाति की दक्षिणी अथवा प्रशांतमहासागरीय शाखा (चित्र ५६, ५७ और प्लेट ८, मलय) इंडोनेशिया, हिंदचीन और अंशतः दक्षिण चीन, कोरिया तथा जापान के लोगों से बनी है। यह समस्त समूह संभवतः आस्ट्रेलाभ मानववैज्ञानिक प्ररूपों के साथ सम्मिश्रण का परिणाम है। कुछ मानवविज्ञानियों ने

इस समूह को श्रीलंका के वेद्दाह और मलक्का के सेनोग्रा लोगों से निकटता की तरफ़ ध्यान दिया है, अधिक गहरे रंग की त्वचा, अधिक चौड़ी नाक और ज्यादा मोटे होंठ जिनके लक्षण हैं। पोलीनेशियाई समूह दक्षिणी मंगोलाभ समूह के काफ़ी निकट है और संपर्कोद्गम का है, क्योंकि उसके निर्माण में मंगोलाभ तथा ग्रास्ट्रेलाभ, दोनों ही, पूर्वजों ने भाग लिया है। पोलीनेशियाइयों तथा दक्षिणी मंगो-

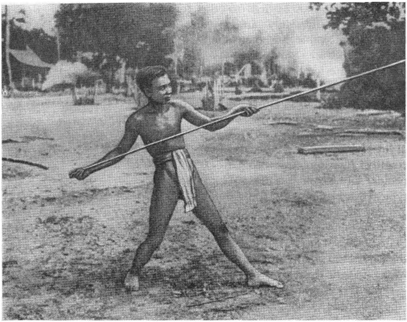


चित्र ५५. सोवियत संघ के तुवा स्वायत्त प्रदेश की स्त्री (मंगोलाभ महाप्रजाति की उत्तरी शाखा)



चित्र ५६. क्वांग्सी का युवा चीनी (मंगोलाभ महाप्रजाति की दक्षिण-पूर्वी शाखा)

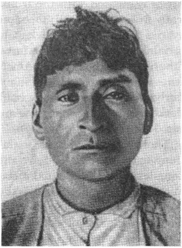
लाभों के बीच समानता निम्नलिखित लक्षणों से प्रकट होती है: सिर पर काले, सीधे, कभी-कभी कड़े बाल, अल्प-विकसित तृतीयक शरीर रोम, पीताभ-जंतुनी त्वचा, कुछ चपटा चेहरा, जो अकसर बहुत चौड़ा और ऊंचा होता है। ग्रास्ट्रेलाभों के साथ समानता चौड़ी नाक, निकले हुए जबड़ों और मोटे होंठों से प्रकट होती है। इस मत का कोई प्रत्यक्ष आधार नहीं है कि पोलीनेशियाई लोग यूरोपाभों से संबंधित हैं।



चित्र ५७. सुमात्रा के मुग्रारा ग्राम का निवासी कूवू कबीले का इंडोनेशियाई

यह विश्वास किया जाता है कि ग्रमरीकी ग्रथवा रेड इंडियनों के पूर्वजों ने उत्तर ग्रमरीका को ग्रौर फिर उत्तर से दक्षिण को ग्रपना प्रवास ग्रब से कोई २५–३० हजार साल पहले शुरू किया था। उनका संभाव्य रास्ता एशिया से बेरिंग भूडमरूमध्य के पार होकर था, जो पहले वहां स्थित था, जहां ग्रब जलडमरूमध्य है। यह भूडमरूमध्य केवल तभी जाकर सुगम्य हुग्रा, जब हिम पीछे हट रहा था। तब तक समस्त ग्रमरीकी महाद्वीप लगभग निर्जन रहा था, क्योंकि हिम युग के दौरान केवल कुछ ही समूह उत्तर-पूर्वी एशिया से वहां पहुंच सके होंगे। हिम के लुप्त होने के बाद जलडमरूमध्य ग्रलंघ्य हो गया ग्रौर जिन मंगोलाभों ने वहां पहले प्रवास किया था, वे शेष संसार से उसी तरह पृथक रहे, जैसे ग्रास्ट्रेलियाई बहुत पहले ग्रपने ही महाद्वीप पर पृथक्कित हो गये थे।

रेड इंडियन धीरे-धीरे सारे ग्रमरीकी महाद्वीप पर फैल गये ग्रौर हजारों साल तक पुरानी दुनिया के प्रभाव से पूर्णतः पृथक रहते हुए विकास करते रहे। वे

चित्र ५८. मेक्सिकोवासी ऐज़टेक इंडियन (मंगोलाभ महाप्रजाति की अमरीकी शाखा)

विशेषकर, पहिये और हल से अपरिचित थे और उनके पास सवारी के या मारवाही पशु नहीं थे। फिर भी अमरीकी इंडियन विकास के बहुत ऊंचे स्तर पर पहुंच गये, जैसा कि हम पेरू, मेक्सिको और युकातान की सभ्यताओं से जानते हैं।

इस बात का निर्णय करने के लिए कि अमरीकी इंडियन मंगोलाभ प्रजाति की कौनसी – उत्तरी अथवा दक्षिणी – शाखा के साथ सबसे घनिष्ठतः संबद्ध हैं, हमें पहले उनके मानववैज्ञानिक लक्षणों को परखना चाहिए।

अधिकांश अमरीकी इंडियनों (चित्र ५८, प्लेट ८) के काले, सीधे, कड़े बाल होते हैं; तृतीयक रोम बहुत अल्प-विकसित होता है; आंखें कत्थई होती हैं; त्वचा पीताभ-भूरी होती है; चेहरा चौड़ा और माथा सीधा या कुछ-कुछ ढलवां होता है; नेत्र-विवर साधारणतः चौड़ा होता है, ऊपरी पलक पर वली होती है, लेकिन अधिनेत्र-कोण बहुत विरल है और केवल स्त्रियों में ही पाया जाता है; उत्तल या (विरले ही) सीधी नाक आगे को अधिक निकली हुई और औसत चौड़ाई की होती है, नासासेतु मध्यम या ऊंचा होता है; होंठ मध्यम, कभी-कभी मोटे होते हैं; चिबुक मध्यम होता है; जबड़ों का प्रक्षेप साधारण और कभी-कभी अल्प होता है; धड़ की तुलना में टांगें मध्यम या छोटी होती हैं। व्यक्तियों के क़द में नाटे

से लंबे तक बहुत विभिन्नता होती है; सिर की आकृति के बारे में भी यही बात है, जो दीर्घशीर्ष से लेकर लघुशीर्ष तक होता है। अन्य लक्षणों में भी उल्लेखनीय वैभिन्य है। कुछ अमरीकी इंडियनों में, उदाहरणार्थ दक्षिण अमरीका के सिरिओनो क़बीले में लहरीले बाल, ख़ासी अच्छी तरह विकसित शरीर रोम, गहरे रंग की त्वचा और अधिक चौड़ी नाक देखने में आते हैं।



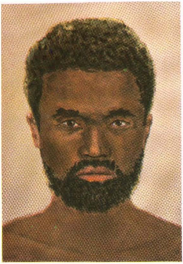
चित्र ५६. रिओ पिराई (पूर्वी बोलीविया) का कुरूंगुआ इंडियन (मंगोलाभ महाप्रजाति की अमरीकी शाखा)

इन ख़ासी अधिक विभिन्नताओं का कारण इंडियनों के मूल प्रजातीय और क़बायली संघटन की जटिलता और उनका उत्तर में अलास्का से लेकर दक्षिण में तिएरा देल फ़्यूगो तक फैले विराट प्रदेश में प्राप्य प्राकृतिक अवस्थाओं के अंतर्गत विकास करना भी हो सकता है।

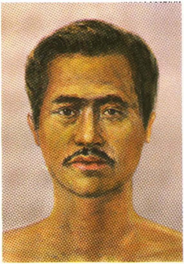
रेड इंडियन संभवतः मध्य-पाषाण काल के पहले अमरीका पहुंचे थे, जिसका प्रमाण उनके अस्थ्यावशेषों और सांस्कृतिक अवशेषों में मिलता है। उस समय आद्य-मंगोलाभ प्रजाति में, जिससे वे पैदा हुए थे, संभवतः वे पूर्णतः विकसित विशिष्ट लक्षण नहीं थे, जो एशियाई महाद्वीप के अधिकांश वर्तमान मंगोलाभों में पाये जाते हैं।

मध्य-पाषाण काल (अथवा उत्तर-पुरापाषाण काल) के बाद से जो अपेक्षाकृत थोड़ा समय गुज़रा है, जिसमें प्राकृतिक पर्यावरण की अवस्थाएं स्थिर रही हैं, उसके दौरान अमरीकी इंडियनों ने अपने प्राचीन मानववैज्ञानिक लक्षणों को नहीं गंवाया है और वे सब लक्षण नहीं प्राप्त किये हैं, जो मंगोलाभों के प्रारूपिक लक्षण हैं।

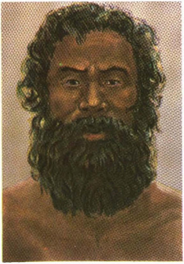
कुछ रेड इंडियनों के घुंघराले बाल (चित्र ५६) दक्षिणी मंगोलाभ प्रजाति से संबंधित किसी प्राचीन प्ररूप के साथ असंदिग्ध संमिश्रण को दर्शाते हैं। इसको



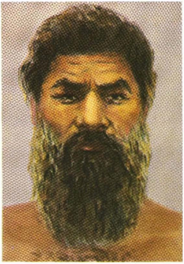
मेलानेशियाई
(विषुवतीय महाप्रजाति की
ओशेनियाई शाखा)



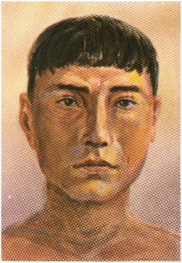
पोलीनेशियाई
(विषुवतीय और मंगोलाभ
महाप्रजातियों का संपर्क समूह)



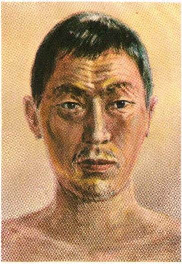
आस्ट्रेलियाई
(विषुवतीय महाप्रजाति की
आस्ट्रेलियाई शाखा)



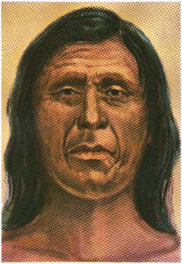
आइनू
([illegible] ति की
[illegible])



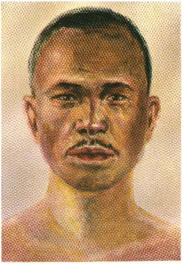
चुक्ची (मंगोलाभ महाप्रजाति की उत्तरी और दक्षिण-पूर्वी शाखाओं का आर्कटिक सपर्क समूह)



एवेंक
(मंगोलाभ महाप्रजाति की उत्तरी शाखा)



उत्तर अमरीकी इंडियन
(मंगोलाभ महाप्रजाति की अमरीकी शाखा)



जावावासी मलय
(मंगोलाभ महाप्रजाति की दक्षिण-पूर्वी शाखा)

पुष्टि करनेवाले कुछ और तथ्य भी हैं। कुछ सोवियत मानवविज्ञानी (न० न० चेबोक्सारोव) इंडियनों को मिश्रित उद्गम का मानने की प्रवृत्ति दिखाते हैं, जिसमें मंगोलाभ प्रजाति की उत्तरी और दक्षिणी शाखाओं का भाग था। यह संभव है कि अमरीकी इंडियन प्रजाति के निर्माण में दक्षिणी शाखा का प्रभाव अधिक था, क्योंकि दक्षिणी मंगोलाभों के लक्षण अधिक देखने में आते हैं। अगर पोलीनेशियाइयों के आस्ट्रेलाभ लक्षणों को नजरअंदाज कर दिया जाये, तो इंडियनों की उनसे भी तुलना की जा सकती है। कुछ विद्वान इन दोनों ही समूहों के चेहरों पर यूरोपाभ लक्षणों के चिह्न देखते हैं। इसलिए हम यह प्रश्न कर सकते हैं: यह समानता पोलीनेशियाइयों (देखिये प्लेट ८) और अमरीकी इंडियनों के प्ररूपों के एक ही प्राचीन समूह से उत्पन्न होने के कारण तो नहीं है?

प्रजातीय लक्षणों की नई दुनिया की विविधि प्राकृतिक अवस्थाओं पर निर्भरता की समस्या का अध्ययन करते समय हमें उष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधों के इंडियनों की उत्तरी तथा दक्षिणी शीतोष्ण कटिबंधों के इंडियनों से तुलना करनी चाहिए। उष्ण तथा उपोष्ण प्ररूप-समूह में कुछ ऐसे लक्षण पाये जाते हैं, जो शीतोष्ण कटिबंधों के रेड इंडियनों को अज्ञात हैं। उदाहरण के लिए, ब्राज़ील तथा बोलीविया के अनेक इंडियनों की त्वचा का रंग कहीं अधिक गहरा होता है और सुविकसित तृतीयक रोम होता है; लहरीले बाल देखने में आते हैं; सिर और चेहरा (और उनकी अस्थिल बनावट) उत्तर अमरीका अथवा पातागोनिया के इंडियनों की तुलना में छोटे होते हैं। इन अंतरों से यह विचार पैदा होता है कि अलग-अलग समूहों के विभिन्न लक्षण उनके विभिन्न प्राकृतिक अवस्थाओं में लंबी अवधि के दौरान रहने के कारण उत्पन्न हुए। इस विचार का इस तथ्य से समर्थन होता है कि पातागोनियाइयों ने, जो वैसी ही प्राकृतिक अवस्थाओं में रहते थे कि जैसी में उत्तरी अमरीकी इंडियन रहते थे, उनके समान ही लक्षण प्राप्त किये हैं।

मंगोलाभ महाप्रजाति के लोगों का प्राकृतिक अवस्थाओं के प्रभाव के अंतर्गत समूहों में विभाजन यूरोपाभ महाप्रजाति के इसी प्रकार के विभाजन का स्मरण कराता है; उत्तर को प्रवास और ठंडे तथा नम जलवायु में लंबे निवास के बाद अनेक समूहों का वर्णकहरण हुआ। एक और सादृश्य नीग्रोसम-आस्ट्रेलाभ महाप्रजाति में भी देखी जा सकती है, जिसके अधिकांश लोगों की त्वचा गहरे रंग की होती है, जब कि कुछ का रंग कहीं हलका होता है (उदाहरण के लिए, दक्षिणी शीतोष्ण कटिबंध के बुशमैन)।

विज्ञान की कसौटी पर नसलवाद

१. नसलवाद का सार

मनुष्य की प्रजातियां एक ही पूर्वज – प्राविम मनुष्य – से विकसित होने के कारण वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जैविक रूप में समान उपजाति-प्रमाग (subspecies divisions) हैं। जहां तक उनके विकास का संबंध है, कोई भी प्रजाति अपने विकास के स्तर में अन्य प्रजातियों से ऊंची या नीची नहीं है। यह वस्तुतः उनके उद्‌गम का एकत्व ही है, जो प्रजातियों के बुनियादी तौर पर – सिर्फ़ अपनी शारीरिक संरचना की विशिष्टतः मानवीय विशेषताओं में ही नहीं, बल्कि अनेक सूक्ष्म विवरणों तक में – समान होने का कारण है। इस समग्र समानता की तुलना में जो थोड़े से प्रजातीय भेद हैं, वे गौण महत्व के हैं।

तथापि ऐसे विद्वान हैं, जो प्रजातीय विशेषताओं को किसी उपजाति (species) और यहां तक कि जाति (genus) की विशेषताएं मानते हैं और जो इन विशेषताओं को एक अतिरंजित वर्गिकीय सार्थकता प्रदान कर देते हैं और यह दिखाने का यत्न करते हैं कि प्रजातियों में गहरे भेद हैं। इन विद्वानों की राय में प्रजातियां अलग-अलग पूर्वजों से पैदा हुईं। तथ्यों की उपेक्षा करके वे यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि मनुष्य की प्रजातियां ऐसे समूह हैं, जो अपने शारीरिक, दैहिकीय और मानसिक लक्षणों में बहुत अधिक भिन्न हैं, कि वे किसी भी प्रकार संबंधित नहीं हैं और एक-दूसरे की विद्वेषी हैं। इस प्रकार के विचारों के समर्थक यदि मनुष्य के सामान्य उद्‌गम को स्वीकार करते हैं, तो ये यह दावा करते हैं कि "तेजी से विकास करती, उच्च" प्रजातियां और "पिछड़ी हुई, नीची" प्रजातियां होती हैं। पूर्वोक्त प्रजातियां प्रगतिशील हैं और अंतोक्त प्रजातियों पर शासन करना उनका कर्तव्य है, जिनके लिए प्राधीन्य, दासत्व और निर्मूलन ही नियत है। मानव-प्रजातियों की जैव असमानता के झूठे विचार का प्रमाणीकरण और समर्थन ही नसलवाद का अंतर्य है।

नसलवादी ग्राम तौर पर "श्वेत" प्रजाति को ऊंची और "अश्वेत" ("काली" तथा "पीली") प्रजातियों को नीची मानते हैं। कुछ वैज्ञानिक, विशेषकर पश्चिम जर्मनी, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका में, "आर्य" सिद्धांत का समर्थन करते हैं, जिसके अनुसार उत्तर और मध्य यूरोपीय मानववैज्ञानिक प्ररूपों के किसी समूह को या उनके वंशजों को "ऊंची" प्रजाति घोषित कर दिया जाता है। मंगोलाभ या नीग्रोसम प्रजाति के "ऊंची" प्रजाति होने के सिद्धांत भी पेश किये गये हैं और अब भी जब-तब सामने आते रहते हैं।

नसलवादी दावा करते हैं कि कुछ "ऊंची" प्रजातियों ने, "नीची" प्रजातियों के दास-श्रम का उपयोग करते हुए, सारी सभ्यता और संस्कृति का निर्माण किया है। वे कहते हैं कि "ऊंची" प्रजातियां "सक्रिय" हैं और इतिहास में अग्रिम भूमिका निबाहती हैं, जब कि "नीची" प्रजातियां, "निष्क्रिय" होने के कारण, अधीनस्थ भूमिका अदा करती हैं। अधिकांश नसलवादी इस मत के हैं कि समाज का विकास प्रजातीय विशिष्टताओं को नहीं प्रभावित करता, बल्कि, इसके विपरीत, प्रजातीय विशेषताएं मानवीय सामाजिक समूहों की प्रगति अथवा अवनति को निर्धारित करती हैं। इस प्रकार प्रजातियों की शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक असमानता का मिथ्या विचार मानवजाति के ऐतिहासिक विकास का अवैज्ञानिक "नसली सिद्धांत" बन जाता है।

नसलवादी इतिहास के इस निराधार जीववैज्ञानिक स्पष्टीकरण का केवल अनुमोदन ही नहीं करते, बल्कि वे प्रजाति और राष्ट्र संवर्गों को समान भी मानते हैं, यद्यपि प्रथमोक्त एक विशुद्ध जीववैज्ञानिक संवर्ग है और अंतोक्त समाज-विज्ञान का है। प्रजाति और राष्ट्र की धारणाओं को उलझाना एक गंभीर ग़लती है।

मानवविज्ञानी हमें ऐसे अनेक तथ्य उपलब्ध कराते हैं, जो इस धारणा के विरुद्ध निश्चित प्रमाण हैं कि संस्कृति का निर्माण केवल किसी "ऊंची" प्रजाति द्वारा किया जाता है। स्मरणीय है कि नसलवादी सांस्कृतिक विकास के स्तर को मस्तिष्क के बड़े आकार पर आश्रित करते हैं। इस धारणा के सबसे निश्चयात्मक खंडनों में एक प्राचीन मिस्रियों में उच्च स्तर की संस्कृति का विकास है। ई० श्मिदृत के आंकड़ों के अनुसार, मिस्री पुरुष-कपाल का आयतन १३६४ घन सेंटीमीटर और स्त्री-कपाल का १२५७ घन सेंटीमीटर था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मिस्रियों का मस्तिष्क पड़ोसी जातियों के लोगों के मस्तिष्क से छोटा (अर्थात औसत से कम) था, जो सांस्कृतिक विकास के अधिक नीचे स्तर पर थे।

विज्ञान की कसौटी पर नसलवाद

१. नसलवाद का सार

मनुष्य की प्रजातियां एक ही पूर्वज – ग्रादिम मनुष्य – से विकसित होने के कारण वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जैविक रूप में समान उपजाति-प्रभाग (subspecies divisions) हैं। जहां तक उनके विकास का संबंध है, कोई भी प्रजाति अपने विकास के स्तर में अन्य प्रजातियों से ऊंची या नीची नहीं है। यह वस्तुतः उनके उद्गम का एकत्व ही है, जो प्रजातियों के बुनियादी तौर पर – सिर्फ़ अपनी शारीरिक संरचना की विशिष्टतः मानवीय विशेषताओं में ही नहीं, बल्कि अनेक सूक्ष्म विवरणों तक में – समान होने का कारण है। इस समग्र समानता की तुलना में जो थोड़े से प्रजातीय भेद हैं, वे गौण महत्व के हैं।

तथापि ऐसे विद्वान हैं, जो प्रजातीय विशेषताओं को किसी उपजाति (species) और यहां तक कि जाति (genus) की विशेषताएं मानते हैं और जो इन विशेषताओं को एक अतिरंजित वर्गिकीय सार्थकता प्रदान कर देते हैं और यह दिखाने का यत्न करते हैं कि प्रजातियों में गहरे भेद हैं। इन विद्वानों की राय में प्रजातियां अलग-अलग पूर्वजों से पैदा हुईं। तथ्यों की उपेक्षा करके वे यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि मनुष्य की प्रजातियां ऐसे समूह हैं, जो अपने शारीरिक, दैहिकीय और मानसिक लक्षणों में बहुत अधिक भिन्न हैं, कि वे किसी भी प्रकार संबंधित नहीं हैं और एक-दूसरे की विद्वेषी हैं। इस प्रकार के विचारों के समर्थक यदि मनुष्य के सामान्य उद्गम को स्वीकार करते हैं, तो वे यह दावा करते हैं कि "तेज़ी से विकास करती, उच्च" प्रजातियां और "पिछड़ी हुई, नीची" प्रजातियां होती हैं। पूर्वोक्त प्रजातियां प्रगतिशील हैं और अंतोक्त प्रजातियों पर शासन करना उनका कर्तव्य है, जिनके लिए प्राधीन्य, दासत्व और निर्मूलन ही नियत है। मानव-प्रजातियों को जैव असमानता के झूठे विचार का प्रमाणीकरण और समर्थन ही नसलवाद का मंतव्य है।

नसलवादी आम तौर पर "श्वेत" प्रजाति को ऊंची और "अश्वेत" ("काली" तथा "पीली") प्रजातियों को नीची मानते हैं। कुछ वैज्ञानिक, विशेषकर पश्चिम जर्मनी, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका में, "आर्य" सिद्धांत का समर्थन करते हैं, जिसके अनुसार उत्तर और मध्य यूरोपीय मानववैज्ञानिक प्ररूपों के किसी समूह को या उनके वंशजों को "ऊंची" प्रजाति घोषित कर दिया जाता है। मंगोलाभ या नीग्रोसम प्रजाति के "ऊंची" प्रजाति होने के सिद्धांत भी पेश किये गये हैं और अब भी जब-तब सामने आते रहते हैं।

नसलवादी दावा करते हैं कि कुछ "ऊंची" प्रजातियों ने, "नीची" प्रजातियों के दास-श्रम का उपयोग करते हुए, सारी सभ्यता और संस्कृति का निर्माण किया है। वे कहते हैं कि "ऊंची" प्रजातियां "सक्रिय" हैं और इतिहास में अग्रिम भूमिका निबाहती हैं, जब कि "नीची" प्रजातियां, "निष्क्रिय" होने के कारण, अधीनस्थ भूमिका अदा करती हैं। अधिकांश नसलवादी इस मत के हैं कि समाज का विकास प्रजातीय विशिष्टताओं को नहीं प्रभावित करता, बल्कि, इसके विपरीत, प्रजातीय विशेषताएं मानवीय सामाजिक समूहों की प्रगति अथवा अवनति को निर्धारित करती हैं। इस प्रकार प्रजातियों की शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक असमानता का मिथ्या विचार मानवजाति के ऐतिहासिक विकास का अवैज्ञानिक "नसली सिद्धांत" बन जाता है।

नसलवादी इतिहास के इस निराधार जीववैज्ञानिक स्पष्टीकरण का केवल अनुमोदन ही नहीं करते, बल्कि वे प्रजाति और राष्ट्र संवर्गों को समान भी मानते हैं, यद्यपि प्रथमोक्त एक विशुद्ध जीववैज्ञानिक संवर्ग है और अंतोक्त समाज-विज्ञान का है। प्रजाति और राष्ट्र की धारणाओं को उलझाना एक गंभीर ग़लती है।

मानवविज्ञानी हमें ऐसे अनेक तथ्य उपलब्ध कराते हैं, जो इस धारणा के विरुद्ध निश्चित प्रमाण हैं कि संस्कृति का निर्माण केवल किसी "ऊंची" प्रजाति द्वारा किया जाता है। स्मरणीय है कि नसलवादी सांस्कृतिक विकास के स्तर को मस्तिष्क के बड़े आकार पर आश्रित करते हैं। इस धारणा के सबसे निश्चयात्मक खंडनों में एक प्राचीन मिस्रियों में उच्च स्तर की संस्कृति का विकास है। ई० श्मिदृत के आंकड़ों के अनुसार, मिस्री पुरुष-कपाल का आयतन १३६४ घन सेंटीमीटर और स्त्री-कपाल का १२५७ घन सेंटीमीटर था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मिस्रियों का मस्तिष्क पड़ोसी जातियों के लोगों के मस्तिष्क से छोटा (अर्थात औसत से कम) था, जो सांस्कृतिक विकास के अधिक नीचे स्तर पर थे।





चित्र ६०. लंबे (बायें) और गोल सिरवाले नार्वेजियाई

मानववैज्ञानिक आंकड़े यह भी सिद्ध करते हैं कि सिर की आकृति और संस्कृति में कोई संबंध नहीं है (चित्र ६०)।

जर्मनियाई (Germanic) जन यह दिखाने का एक श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि संस्कृति प्रजाति से स्वतंत्र होती है। जिस समय रोमन राज्य अपने चरम स्तर पर था, उस समय उनके पूर्वज बर्बर थे। बाद में जब जर्मनियाई जनों ने अपने को विकास की अधिक अनुकूल अवस्थाओं में पाया, तो उन्होंने उच्च सांस्कृतिक स्तर प्राप्त कर लिया। इसलिए संस्कृति का प्रजातीय लक्षणों से ज़रा भी नाता नहीं है, बल्कि वह सामाजिक और आर्थिक कारकों द्वारा निर्धारित होती है।[11] मनुष्य के असभ्यता से बर्बरता तक के विकास के दौरान और बाद में प्रजातीय लक्षण तनिक भी सार्थकता के नहीं थे।

नसलवादी अपने मिथ्या विचारों पर ज़ोर क्यों देते हैं? इसका उत्तर एकदम सीधा है। "ऊंची" और "नीची" प्रजातियों का, एक प्रजाति के दूसरी प्रजाति पर प्रभुत्व रखने के अधिकार का सिद्धांत राष्ट्रों के बीच युद्धों का औचित्य सिद्ध करता है – यह साम्राज्यवादी नीति को ढंकने का विचारधारात्मक नकाब है।

नसलवादी मानव समाज में वर्ग संघर्ष को पशु-जगत में चलनेवाले संघर्ष से समीकृत करते हैं; वे सामाजिक-डार्विनवाद के प्रतिक्रियावादी सिद्धांत का उपयोग

करते हैं, जो उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में विकसित हुआ था। यह सिद्धांत कहता है कि आधुनिक मानव समाज उन्हीं नियमों से शासित होता है, जो पशु-जगत में काम करते हैं—अस्तित्व के लिए निर्मम संघर्ष, योग्यतम की उत्तरजीविता (survival of the fittest) और अयोग्यों का उन्मूलन। सामाजिक-डार्विनवादियों की भांति नसलवादी भी यह दावा करते हैं कि मानव समाज का वर्गों में विभाजन जैव असमानता का परिणाम है और प्राकृतिक वरण के कारण है। इस प्रकार नसलवाद पूंजीवादी समाज में सामाजिक अन्याय की व्याख्या करने के लिए प्रकृति के नियमों का उपयोग करने का प्रयत्न करता है।

नसलवादियों ने सामाजिक-डार्विनवाद का सिद्धांत विकसित किया और यह दावा किया कि निश्चित वर्गों के लोग निश्चित प्रजातीय लक्षणों से युक्त होते हैं। इस सिद्धांत के पैरोकार दावा करते हैं कि अमीर लोग, अधिकांश मामलों में, दीर्घशीर्ष प्ररूप के होते हैं, जब कि ग़रीब मध्यमशीर्ष या लघुशीर्ष होते हैं। यह देखने के लिए कि यह दावा एकदम निराधार है, बस तथ्यों को देखने भर की ज़रूरत है। स्वीडनी सेना में सेवा के लिए बुलाये गये रंगरूटों की एक जांच में यह सिद्ध किया गया कि धनी (पूंजीपति) और निर्धन (मज़दूर तथा किसान) वर्गों—दोनों—में शीर्ष सूचकांक एक ही था, यानी ७७.०। इसी जांच ने यह दिखाया कि धनी रंगरूटों का औसत क़द १७३.१ सेंटीमीटर और निर्धनों का १७१.६ सेंटीमीटर था। तथापि क़द में अंतर का प्रजाति से कोई संबंध नहीं है और इसका कारण धनिकों द्वारा आदतन खाया जानेवाला भोजन है। ये तथ्य यह दिखाने के लिए काफ़ी हैं कि प्रजाति और वर्ग की धारणाओं को उलझाना नहीं चाहिए। मानव समाज के इतिहास का अध्ययन करते समय वस्तुतः विद्यमान वर्ग संघर्ष को आविष्कृत "प्रजाति संघर्ष" से प्रतिस्थापना नहीं करनी चाहिए।

उपरोक्त से यह देखा जा सकता है कि प्रजाति के जीववैज्ञानिक संवर्ग को राष्ट्र और वर्ग जैसे सामाजिक चरित्र के संवर्गों के साथ उलझाना नसलवाद की लाक्षणिकता है। इसके अनुसार कि राष्ट्रों के बीच युद्ध का औचित्य ठहराना आवश्यक है या एक ही जाति के भीतर शोषण का, नसलवाद जिस सिद्धांतहीन तरीक़े से प्रजाति को राष्ट्र अथवा वर्ग के साथ एकीकृत करता है, वह स्पष्टतः दिखाता है कि नसलवाद अवैज्ञानिक और प्रतिक्रियावादी है।[13]

शोषकों के शासक वर्ग की सामाजिक मांगों को पूरा करते हुए नसलवादी सत्य को इस हद तक विकृत कर देते हैं कि भाषाओं तक को प्रजातीय चरित्र प्रदान कर देते हैं और मानवीय मानोवृत्ति को प्रजातीय भावना का परिणाम मानते हैं।

२. प्रजाति और भाषा

स्लाव जनों सहित यूरोपीय जातियों को भाषाओं में समानता से अकसर यह विचार पैदा हुआ है कि वे संबंधित हो सकती हैं। अनेक भाषाविदों ने उत्साहपूर्वक उस "आद्य पूर्वज" की खोज की है, जिसकी भाषा से समान यूरोपीय भाषाएं विकसित हुई हैं। एक समय समझा जाता था कि संस्कृत में विद्वानों को यह "आद्य भाषा" मिल गई है। यह सही है कि अनेक भारतीय भाषाएं और फ़ारसी यूरोपीय भाषाओं से कुछ सादृश्य दर्शाती हैं, जिससे भाषाओं के इस सारे समूह के लिए "भारोपीय" (Indo-European) नाम पैदा हुआ।

यह विश्वास किया जाता है कि सुदूर अतीत में भारत और ईरान पर संसार के किसी अन्य भाग के क़बीलों ने हमला किया, जो भारोपीय भाषाएं बोलते थे और जिन्होंने इन देशों को जीत लिया। विजेताओं ने अपने को स्थानीय आबादी से, जिसे उन्होंने दास बनाया था, "ऊंची" प्रजाति घोषित कर दिया; उन्होंने अपने आपको आर्य (श्रेष्ठ) नाम दिया।

जिन भारोपीय भाषाओं की धातुएं भारत और ईरान के निवासियों की भाषाओं के समान हैं, उन्हें भी कुछ लेखकों ने "आर्य" कहा है। बाद में "आर्य" नाम कुछ प्रजातीय समूहों पर लागू किया गया और प्रतिक्रियावादी "सिद्धांतकारों" की व्याख्याओं में भाषाविदों की खोजों को एक अवैज्ञानिक, नसलवादी रंग दे दिया गया। अनेक नसलवादी केवल आधुनिक उत्तर यूरोप के लंबे, नीली आंखोंवाले गौरवर्ण लोगों को ही "वास्तविक आर्य" मानते हैं–इन जातियों को "नार्डिक प्रजाति"* (Nordic race) का नाम दिया गया है।

अगर भाषा प्रजातीय भावना की संतान है, तो भारोपीय भाषाएं बोलनेवाले लोगों को उत्तरी, "आर्य" प्रजाति के लक्षणों से युक्त होना चाहिए। लेकिन ऐसा है नहीं। कुर्द तथा कई अन्य जातियों के, जो भाषा के लिहाज़ से भारोपीय हैं, बालों और त्वचा का रंग अधिक गहरा होता है; उनमें हलके रंग की आंखोंवाले

---

* "नार्डिक" जर्मन भाषा के "नोर्द" (उत्तर) शब्द से निकला है। इससे नार्डवाद, नार्डवादी, आदि जैसे शब्द निकले हैं, जिनका अमरीकी नसलवादी यह साबित करने के लिए उपयोग करने के बहुत शौक़ीन हैं कि "शत-प्रति-शत यैंकी" ही "शुद्ध उच्च प्रजाति" के लोग हैं।

व्यक्ति बिरले ही होते हैं। आर्य भाषाएं दक्षिणी यूरोप की लाक्षणिक हैं, जहां अधिकांश लोग गहरे रंग की आंखों और बालोंवाले होते हैं और कल्पित "आर्यों" से किसी भी प्रकार नहीं मिलते।

इसके विपरीत, लंबे, हलके रंग की आंखों और बालोंवाले फ़िन तथा एस्तोनियाई लोग अपने प्रजातीय लक्षणों में उत्तरी यूरोपीय प्ररूप के निकट हैं; तथापि फ़िनों और एस्तोनियाइयों की भाषाओं का भारोपीय भाषाओं से लेश मात्र भी साम्य नहीं है।

इस प्रकार एक भारोपीय अथवा आर्य "आद्य भाषा" और "आर्य प्रजाति" के सभी लक्षणों से युक्त "आद्य जनों" का सिद्धांत खंडित हो जाता है, और साथ ही यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि किसी भी प्रजाति को अपने को "आर्य" —श्रेष्ठ— कहने का अधिकार नहीं है।

एक ही भाषा बोलनेवाली जातियां प्रजातीय दृष्टि से एकरूप नहीं होतीं और साधारणतया अनेक मानववैज्ञानिक प्ररूपों के प्रतिनिधियों से मिलकर बनी होती हैं। उदाहरण के लिए, जर्मनी में ऐसे छः प्ररूप पाये जाते हैं।

अफ़्रीका में नीग्रो अपनी-अपनी भाषाएं बोलते हैं, उत्तरी अमरीका में अंग्रेजी और दक्षिण अमरीका में स्पेनी बोली जाती है, आदि-आदि। इस प्रकार एक प्रजाति के समूह, जो अलग-अलग जातियों और राष्ट्रों की संरचना में प्रवेश करते हैं, अलग-अलग भाषाएं बोलते हैं।

यह सब यही दिखलाता है कि भाषा प्रजाति से स्वतंत्र होती है और इस अवैज्ञानिक सिद्धांत को झूठा साबित करता है कि भाषा प्रजाति में "जैविक रूप में अंतर्निहित" किसी रहस्यमयी "प्रजातीय भावना" की संतान होती है। भाषा पूरी तरह से समाज के विकास पर निर्भर करती है, यह जाति के विकास के साथ उदित होती, जीती और मरती है; इसका एक जीववैज्ञानिक समूह के रूप में प्रजाति से कोई भी कार्य-कारणात्मक संबंध नहीं है।

३. प्रजाति और मनोवृत्ति

बहुत समय पहले से ही प्रजातियों पर ग़लत तौर पर सुस्पष्ट मानसिक भेद आरोपित किये जाते रहे हैं। विख्यात स्वीडनी प्रकृतिविद कार्ल लिन्ने (१७०७–१७७८) मानव-प्रजातियों का उनकी शारीरिक विशिष्टताओं के अनुसार कमोबेश

वैज्ञानिक वर्गीकरण सुझानेवाले सबसे पहले वैज्ञानिक थे ; तथापि ".एशियाई मनुष्य" पर निर्दयता, विषाद, जिद और कृपणता, "अफ़्रीकी मनुष्य" पर द्वेष, कुटिलता, आलस्य और उदासीनता, और "यूरोपीय मनुष्य" पर गतिशीलता, बुद्धि और आविष्कारशीलता (अर्थात उच्चतर मानसिक गुण) आरोपित करके उन्होंने ग़लती की। इस तरह लिन्ने ने "श्वेत" प्रजाति को अन्य प्रजातियों से ऊंची श्रेणी में रखा था।

इसके विपरीत, डार्विन ने विभिन्न प्रजातियों के लोगों में उच्च तंत्रिका सक्रियता की अभिव्यक्तियों की आधारभूत समानता को स्वीकार किया। उन्होंने लिखा है, "*तिएरा देल फ़्यूगो के लोग निम्नतम बर्बरों में माने जाते हैं, लेकिन इस* बात से में लगातार चकित होता रहता था कि जलपोत "बीगल" पर सवार तीनों नेटिव (देशी आदमी), जो कुछ साल इंगलंड में रह चुके थे और थोड़ी अंग्रेज़ी बोल सकते थे, स्वभाव में और हमारी अधिकांश मानसिक क्षमताओं में हमारे *कितने समान थे।*"[13]

डार्विन ने तिएरा देल फ़्यूगोवासियों के निम्न सांस्कृतिक स्तर को मानसिक प्रजातीय विशिष्टताओं के कारण हरगिज़ नहीं बताया। .:इसके विपरीत, उन्होंने इसका कारण सामाजिक प्रकृति के कारकों में तलाश किया : "तिएरा देल *फ़्यूगोवासियों को संभवतः अन्य विजेता गिरोहों ने अपने बंजर देश में* बसने के लिए विवश किया और परिणामस्वरूप वे कुछ और नीचे हो गये होंगे..."[14]

आनन पेशियों द्वारा आवेशों को, आत्मिक अनुभवों की अभिव्यक्ति पर विचार करते हुए डार्विन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस मामले में विभिन्न प्रजातियों के प्रतिनिधियों में अद्भुत समानता है।

एक और अंश में डार्विन संसार के सभी भागों में प्राप्त और मनुष्य के सबसे प्रारंभिक पत्थर के शूलाग्रों और बाणाग्रों की आकृति और निर्माण पद्धतियों की असाधारण एकरूपता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। वह इस एकरूपता का कारण उस सुदूर अतीत तक में अत्यंत भिन्न-भिन्न प्रजातियों की समान आविष्कारशीलता और मानसिक क्षमता बतलाते हैं।

प्रजातियों के मानसिक भेद के सिद्धांत को इस तथ्य से प्रमाणित करने के प्रयत्न किये गये हैं कि विभिन्न समूहों में मस्तिष्क के भार में कई सौ ग्राम की सीमा के भीतर विभिन्नता होती है। तथापि किसी आदमी की योग्यताओं का निर्णय उसके मस्तिष्क के भार से नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए,

विख्यात फ़्रांसीसी लेखक अनातोले फ़्रांस के मस्तिष्क का भार केवल १०१७ ग्राम था, जब कि रूसी लेखक इवान तुर्गेनेव का दिमाग़ उससे लगभग दुगने वज़न– २०१२ ग्राम–का था। दोनों ही लेखक प्रगतिशील साहित्य की कृतियों के रचयिताओं के] नाते न्यायतः ही विश्व-विश्रुत थे।

असाधारण लोग सभी प्रजातियों में पैदा होते हैं। एशिया और अफ़्रीका के कितने ही कलाकारों, राजनेताओं और वैज्ञानिकों ने विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की है। नीग्रोसम प्रजाति के अनेक प्रतिनिधियों ने संस्कृति के क्षेत्र में श्रेष्ठतम ऊंचाइयां प्राप्त की हैं।

विशेष बुद्धि-परीक्षणों* का उपयोग करके प्रतिक्रियावादी पूंजीवादी वैज्ञानिक यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि एक प्रजाति अन्य प्रजातियों से मानसिक दृष्टि से श्रेष्ठ होती है। परीक्षांतर्गत समूहों की सामाजिक स्थिति में भेदों या समूहों के व्यक्तियों द्वारा प्राप्त शिक्षा के भेदों की ओर ज़रा भी ध्यान दिये बिना ये कोशिशें कई बार की गई हैं। निस्संदेह सच्चे वैज्ञानिक मानसिक योग्यताओं का अभि-निश्चय करने के साधन के रूप में इन परीक्षणों के प्रति अत्यंत नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं।

कुछ प्रतिक्रियावादी जर्मन मानवविज्ञानियों ने अगस्त, १९३८ में कोपेनहेगन में हुई अंतर्राष्ट्रीय मानववैज्ञानिक तथा जातिवैज्ञानिक कांग्रेस में पढ़े अपने निबंधों में यह दिखाने का प्रयत्न किया कि आनुवंशिक मानसिक प्रजातीय लक्षणों का अस्तित्व होता है।[45] उनका नसलवाद बहुत भोंडा था और उन्होंने तो यहां तक

---

* इन परीक्षणों में प्रश्न होते हैं और उनके उत्तरों से मानसिक संगठन के स्तर को निर्धारित करने की कोशिशें की जाती हैं; इस तरीक़े से परीक्षार्थी द्वारा केवल प्राप्त शिक्षा के अनुसार मानसिक विकास के स्तर का अनुमान लगाना ही संभव होता है।

अगर अति-शिक्षित लोगों को और निरक्षर अथवा अल्प-शिक्षित व्यक्तियों को भी बहुत ही कठिन प्रश्न दिये जाते हैं, तो अंतोक्त समूह की मानसिक योग्यताओं का एक विकृत चित्र प्राप्त होता है। "श्वेत" प्रजातियों की तुलना में "काली" तथा "पीली" प्रजातियों के मानसिक "पिछड़ेपन" को "सिद्ध" करने के लिए प्रतिक्रियावादी वैज्ञानिक इसी तरीक़े का उपयोग करते हैं। [देखिये "प्रजातियां तथा नसलवाद का विज्ञान" (मास्को राजकीय विश्वविद्यालय के मानवविज्ञान संस्थान का कार्य-विवरण) नामक संकलन में या० या० रोगीन्स्की का लेख। सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी द्वारा १९३८ में रूसी भाषा में प्रकाशित]।

कहा कि आस्ट्रेलियाई आदिवासी अपनी "घटिया प्रजातीय मानसिकता" के कारण लगभग विलुप्त हो गये हैं, जब कि न्यूज़ीलेंड के माओरियों ने यूरोपीय संस्कृति को सफलतापूर्वक अपना लिया है, क्योंकि उन मानवविज्ञानियों की राय में, वे यूरोपाभ प्रजाति के हैं।

कांग्रेस में अधिक प्रगतिशील प्रतिनिधियों द्वारा इसका तीव्र प्रतिवाद किया गया। उन्होंने मानव-मस्तिष्क में प्राकृतिक प्रजातीय लक्षणों के अस्तित्व को अस्वीकार किया और यह दिखाया कि क़बीलों और जातियों के मानसिक स्वभाव का कारण सांस्कृतिक स्तर में अंतर है। वैज्ञानिक तथ्यसामग्री इस दावे का भी खंडन करती है कि ऐसा कोई विशेष "प्रजातीय सहजबोध" (racial instinct) होता है, जो मनुष्य की प्रजातियों में वैमनस्य को जन्म देता है।

अनुकूल सामाजिक अवस्थाएं प्रदान करने पर किसी भी प्रजातीय संरचना के लोग उन्नत संस्कृति और सभ्यता का निर्माण कर सकते हैं। व्यक्तियों का मानस, जातीय चरित्र और आचरण सामाजिक पर्यावरण के निर्धारक प्रभाव के अंतर्गत अनुबंधित होते और रूप लेते हैं; प्रजातीय विशिष्टताएं मानसिक सक्रियता के विकास में कोई भी भाग नहीं लेतीं।

प्रमुख रूसी जातिविज्ञानी और मानवविज्ञानी निकोलाई मिक्लूख़ो-माक्लाई ने ओशेनिया की जातियों के, जो सांस्कृतिक विकास के निम्न स्तर पर थीं, मानसिक स्तर के अभिनिश्चयन को ही अपने अध्ययन का लक्ष्य बनाया। उन्होंने न्यू गिनी के पापुआइयों (चित्र ६२) के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध में कई साल गुज़ारे और ऐसे अनेक तथ्य खोजे, जो यह दिखाते थे कि उनमें यूरोपीयों जैसी ही उच्च मानसिक योग्यताएं हैं। उदाहरण के लिए, एक दिन मिक्लूख़ो-माक्लाई उस इलाक़े का नक़शा बना रहे थे, जिसमें वह रहते थे। उनके पास खड़े एक पापुआई ने, जिसने अपनी ज़िंदगी में कभी कोई नक़शा नहीं देखा था, तट-रेखा के आरेखण में एक ग़लती को तुरंत पकड़ लिया। पापुआई ने उसे बहुत यथार्थतापूर्वक सही कर दिया।

मिक्लूख़ो-माक्लाई पापुआइयों को कलात्मक रुचि के बुद्धिमान लोग बताते हैं, जो अपने पूर्वजों की सुंदर मूर्तियां बनाते हैं और अनेक कलात्मक आभूषण तैयार करते हैं।

कई साल तक किये मानववैज्ञानिक तथा जातिवैज्ञानिक अनुसंधान के फलस्वरूप मिक्लूख़ो-माक्लाई अपनी कृतियों में यह दिखा सके कि पापुआई सांस्कृतिक विकास करने में पूर्णतः समर्थ हैं और इस क्षेत्र में यूरोपीयों के बराबर हैं।"

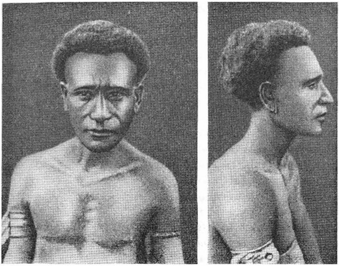
उनके अनुसंधानों ने नसलवादियों के सिद्धांत की अवैज्ञानिक और पूर्वाग्रहपूर्ण प्रकृति को प्रकट किया, जो यह दावा करते हैं कि श्यामवर्ण प्रजातियां उस बौद्धिक संपदा को आत्मसात करने के अयोग्य हैं, जो मानवजाति ने संचित की है। मिक्लूख़ो-मावलाई ने अपना संपूर्ण अल्प जीवन मनुष्य की प्रजातियों की जैव समानता सिद्ध करने को समर्पित कर दिया। उनका मत था कि सभी प्रजातियों के लोग सांस्कृतिक क्षेत्र में उच्चतम उपलब्धियां प्राप्त करने में समान रूप से सक्षम हैं।

रूस के महानतम चिंतकों में से एक, निकोलाई चेर्निशेव्स्की ने भी मानव-प्रजातियों से संबंधित प्रश्नों में विशेष दिलचस्पी प्रकट की थी।[17] उन्होंने प्रजातीय भेदों और समानताओं के ब्योरों की तरफ़ अधिकतम ध्यान देते हुए नसलवादियों की इस धारणा को अस्वीकार किया कि मनुष्य की प्रजातियां मानसिक और शारीरिक दृष्टि से विकास की अलग-अलग मंज़िलों पर हैं। उन्होंने ऐतिहासिक विकास पर प्रजाति के प्रभाव को भी अस्वीकार किया और नसलवाद की प्रतिक्रियावादी प्रकृति का परदाफ़ाश किया।



चित्र ६१. न० न० मिक्लूख़ो-मावलाई (१८४६–१८८८)

चेर्निशेव्स्की ने प्रजातियों और नसलवाद पर अपने विचारों को सूत्रबद्ध करने में प्रमाणित वैज्ञानिक तथ्य-सामग्री का उपयोग किया। उन्होंने तंत्रिका-तंत्र के क्रियाविज्ञान के अध्ययन में इवान सेचेनोव की उपलब्धियों की बड़ी सराहना की। इस श्रेष्ठ रूसी वैज्ञानिक ने इस अभिधारणा के खंडन में कि मनुष्य की प्रजातियां मानसिक रूप से समान नहीं हैं, लिखा था: "मनुष्य की विचार-क्रिया और उसकी संवेदन-क्षमता के बुनियादी लक्षण उसके ऐतिहासिक अस्तित्व के विभिन्न युगों में अपरिवर्तित रहते हैं और प्रजाति, भौगोलिक परिस्थिति अथवा संस्कृति के स्तर पर निर्भर



चित्र ६२. न्यू गिनी-निवासी पापुग्राई
(विपुवतीय महाप्रजाति की ग्रोशेनियाई शाखा)

नहीं रहते। केवल इन्हीं अवस्थाओं के अंतर्गत संसार में सभी जातियों के – चाहे वे किसी भी प्रजाति की क्यों न हों – नैतिक और मानसिक बंधुत्व की धारणा को समझा जा सकता है; केवल इन्हीं परिस्थितियों के अंतर्गत हम अपने पूर्वजों के विभिन्न कालों में विचारों, भावों और कार्यों को समझ सकते हैं।"[48]

४. सोवियत संघ में प्रजातियों और जातियों की समानता

ज़ारशाही रूस में ऐसी जातियां और क़बीले थे, जिन्हें कोई नागरिक स्वतंत्रता नहीं प्राप्त थी और चरम आर्थिक तथा जातीय उत्पीड़न की अवस्था में रखा जाता था। उज़्बेक, क़ज़ाख़, कारेलियाई, याकूत तथा अन्य ग़ैर-रूसी जातियों को अकसर ऐसे नाम दिये जाते थे, जो उन्हें आपत्तिजनक लगते थे – मिसाल के लिए नेनेत्सों

को सामोयेद, अर्थात अपने आपको खानेवाले, नरभक्षी कहा जाता था। ग़ैर-रूसी जातियों के बारे में निष्ठुर रूसीकरण की नीति को क्रियान्वित किया जाता था और स्थानीय भाषाओं तथा बोलियों का दमन किया जाता था। रूस के शासक वर्ग सत्ता को अपने ही हाथों में रखने की कोशिश में रूस में शामिल जातियों में वैमनस्य फैलाया करते थे।

रूसी लोग भी, जो प्रमुख जाति माने जाते थे, ज़ारशाही, पूंजीपतियों और जमींदारों के निष्ठुर शोषण का शिकार थे। अभिजातों ने कुलीनता की कहानी गढ़कर अपने आपको जनसाधारण से, "नीचे वर्गों" से अलग कर रखा था।

१९१७ की महान अक्तूबर क्रांति ने शोषकों की सत्ता को ख़त्म कर दिया। रूस के लोग एक बहुजातीय राज्य के सदस्यों के रूप में अपने सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का संवर्धन करने में समर्थ हो गये।

संघीय और स्वायत्त जनतंत्रों, स्वायत्त प्रदेशों और जातीय क्षेत्रों की स्थापना की गई। आमूल सामाजिक तथा आर्थिक सुधारों ने देश की सारी ही जातियों के जीवनस्तर को सुधारा, उनके जीवन के ढर्रे में काफ़ी परिवर्तन पैदा किये और जातीय संस्कृतियां तेज़ी के साथ प्रगति करने लगीं।

जातीय संस्कृति का यह विकास सोवियत सत्ता के प्रारंभिक वर्षों में भी बहुत प्रत्यक्ष हो गया था; हर जगह स्कूल खोले गये, निरक्षरता का उन्मूलन किया गया, मातृभाषा में शिक्षा दी जाने लगी और जातीय साहित्य, कला और संगीत ने ऊंचा स्तर प्राप्त किया, स्थानीय विज्ञानकर्मी तेज़ी से पैदा हुए। ताजिक, मारी, कोमी, एवेंक तथा अन्य अपेक्षाकृत छोटी जातियों ने, जिनका ज़ारशाही रूस में क्रमिक विलोपन ही नियत था, जल्दी ही अपने पुराने आर्थिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन पर पार पा ली।

लेनिन की जातीय नीति के सतत कार्यान्वयन की परिणति सोवियत समाजवादी जनतंत्रों की पहली कांग्रेस के ऐतिहासिक निर्णय में हुई, जिसने ३० दिसंबर, १९२२ को सोवियत समाजवादी जनतंत्र संघ की स्थापना की।

इस प्रकार लेनिन द्वारा जनवरी, १९१८ में ही की गई भविष्यवाणी साकार हुई: "...मुझे पूरा विश्वास है कि स्वतंत्र जातियों के विभिन्न अलग-अलग संघ अपने को अधिकाधिक क्रांतिकारी रूस के चहुं ओर इकट्ठा करते जायेंगे। यह संघ बिना झूठ और ज़ोर-ज़बरदस्ती के, पूर्णतः स्वैच्छिक आधार पर बढ़ेगा और अपराजेय होगा।"[49]

विभिन्न जनतंत्रों, प्रदेशों और क्षेत्रों के इतिहास ने सोवियत संघ की सभी

जातियों को अपने राज्यत्व, अर्थतंत्र और संस्कृति को विकसित करने की क्षमता को दिखा दिया है। पुरानी पूंजीवादी जातियों से नई समाजवादी जातियों का निर्माण किया गया है। सोवियत संघ का संविधान कहता है:

"सोवियत संघ के सभी नागरिकों की, उनकी जाति या प्रजाति के लिहाज़ के बिना, आर्थिक, राजकीय, सांस्कृतिक और सामाजिक-राजनीतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समानता एक निर्विवाद नियम है।

"प्रजाति और जाति के आधार पर नागरिकों के अधिकारों का प्रत्यक्ष या परोक्ष परिसीमन, या, इसके विपरीत, प्रत्यक्ष या परोक्ष विशेषाधिकारों की स्थापना और इसी तरह प्रजातीय अथवा जातीय श्रेष्ठता, घृणा और उपेक्षा का किसी भी प्रकार का प्रचार क़ानून द्वारा दंडनीय है।"

सोवियत संघ की सभी जातियों ने, जिनमें विभिन्न प्रजातीय समूह सम्मिलित हैं, अपने राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में काफ़ी सफलताएं प्राप्त की हैं। उदाहरण के रूप में उद्मूर्त जाति (पूर्वी यूरोप) को लिया जा सकता है।

अक्तूबर समाजवादी क्रांति के पहले उद्मूर्तिया ज़ारशाही रूस का एक पिछड़ा हुआ सूबा था, जिसकी आबादी अधिकांशतः निरक्षर थी। ग़रीबी और बीमारियों के कारण विलोपन ही उसकी नियति था। सोवियत सत्ता के अंतर्गत उद्मूर्तिया बड़े उद्योग और श्रेष्ठ सामूहिक फ़ार्मों से युक्त एक प्रगतिशील जनतंत्र बन गया है। उद्मूर्तों की भूतपूर्व अलिखित भाषा को एक लिपि प्रदान की गई है। स्कूलों में शिक्षा उद्मूर्त भाषा के माध्यम से दी जाती है और रूसी भाषा एक समांतर भाषा के रूप में सिखाई जाती है। जनतंत्र में आठवर्षीय शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क है। जनतंत्र का साहित्य विकास कर रहा है। उद्मूर्त लोग मार्क्स और लेनिन की अमर कृतियों को और रूसी तथा विश्व-साहित्य की श्रेष्ठतम रचनाओं को अपनी मातृभाषा में पढ़ सकते हैं। उद्मूर्त स्वायत्त सोवियत समाजवादी जनतंत्र की राजधानी इज़ेव्स्क एक महत्वपूर्ण औद्योगिक और सांस्कृतिक केंद्र है। वहां अनेक कारख़ाने, उच्च शिक्षा प्रतिष्ठान, कई अनुसंधान संस्थान, थियेटर, एक संगीत समाज और एक रेडियो प्रसारण केन्द्र हैं। जनतंत्र भर में पुस्तकालय, क्लब, सिनेमा तथा अन्य सांस्कृतिक व शैक्षिक प्रतिष्ठान हैं। विज्ञानकर्मियों, अध्यापकों, चिकित्सकों, इंजीनियरों, सस्यविदों, पशुविदों और कला तथा साहित्य में निरत लोगों की एक श्रेष्ठ वाहिनी तैयार हो गई है।

एक और मिसाल के तौर पर हम कोर्याक जनों को ले सकते हैं, जो सोवियत संघ के एशियाई भाग के उत्तर-पूर्व में रहते हैं और कोर्याक जातीय क्षेत्र की बुनियादी आबादी हैं। कोर्याक लोग दो समूहों में विभाजित हैं – रेनडियर-पालक ख़ानाबदोश समूह और आवासी कोर्याक, जो मछली और पशु पकड़ने, सील तथा वालरस का शिकार करने तथा जंगली फल भी इकट्ठा करने में लगे हुए हैं।

समाजवादी निर्माण के दौरान कोर्याक अर्थतंत्र की प्राचीन शाखाओं का आधुनिकीकरण हो गया है और नई शाखाओं की स्थापना हुई है। गांवों के लोगों ने सहकारी समितियां क़ायम कर ली हैं। मछुए अब खाल की बनी डोंगियों की जगह मोटरबोटों का उपयोग करते हैं और उनके पास आधुनिक साजसामान है। आवासी कोर्याक शाकोत्पादन और डेरी उद्योग को सफलतापूर्वक विकसित कर रहे हैं। आरामदेह मकान बनाये गये हैं, जिनमें बिजली और रेडियो हैं। रेनडियर-पालन का वैज्ञानिक पुनर्गठन किया गया है और अब वह पशुविदों की देखरेख में किया जाता है। रेनडियर-पालक कोर्याकों ने भी अब आवासी जीवन-प्रणाली को अपना लिया है। स्थानीय भाषा को लिपि प्रदान की गई है और कोर्याक भाषा में पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं। स्कूल जाने की आयु के सभी बच्चों को सामान्य शिक्षा मिलती है, जिन बालकों के माता-पिता रेनडियर-पालक हैं, उन्हें बोर्डिंग स्कूलों में जगह दी जाती है। चिकित्सा-प्रतिष्ठानों का एक व्यापक जाल फैला हुआ है; उच्च शिक्षा-प्राप्त सरकारी कर्मचारियों, अध्यापकों, इंजीनियरों, अविधिज्ञों और चिकित्साकर्मियों का एक बड़ा दस्ता तैयार किया जा चुका है।

प्रत्येक संघीय जनतंत्र की अपनी विज्ञान अकादमी है। अक्तूबर क्रांति के पहले रूस में कम भाषाओं में ही पुस्तकें प्रकाशित की जाती थीं। आज सोवियत संघ में १४५ भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं, जिनमें से ४० की तो क्रांति के पहले कोई लिपि तक न थी।

उन जातियों के अनेक प्रतिनिधियों ने कला के क्षेत्र में महती सफलताएं प्राप्त की हैं, जो पहले सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित थीं। कज़ाख़स्तान के जंबूल और लेजगी (*दाग़िस्तान*) के *सुलेमान स्ताल्स्की जैसे कवियों और शायरों* की प्रेरणापूर्ण कृतियां सारे सोवियत संघ ही नहीं, विदेशों में भी सुविख्यात हैं।

सोवियत संघ में कम्युनिस्ट निर्माण की आधुनिक मंज़िल जातीय संबंधों के विकास की एक नई मंज़िल की द्योतक है, यह मंज़िल, जिसमें और प्रगति होगी और जातियां और भी अधिक निकट आयेंगी।

साम्राज्यवादियों द्वारा फैलाये नसलवादी सिद्धांतों का लक्ष्य जातियों में फूट और वैमनस्य पैदा करना है। साम्राज्यवाद की मानवद्वेषी विचारधारा को समाजवादी विचारधारा परास्त करती है, जो दुनिया भर में अधिकाधिक फैल रही है, सभी प्रजातियों और जातियों की समानता की उद्घोषणा करती है और जो सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों की शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की गहन मानवीय नीति का एक संघटक अंग है।

प्रजाति समस्या के जीववैज्ञानिक पहलू पर प्रस्ताव

(यूनेस्को। प्रजाति समस्या के जीववैज्ञानिक पहलुओं के विशेषज्ञों की गोष्ठी। मास्को, १२–१८ अगस्त, १९६४)

प्रजाति समस्या के जीववैज्ञानिक पहलुओं के बारे में अपना मत व्यक्त करने और, विशेषतः, १९५१ के प्रजाति तथा प्रजातीय विभेद विषयक घोषणापत्र की अनुवृत्ति के रूप में १९६६ में प्रकाशन के लिए आयोजित प्रजाति तथा प्रजातीय पूर्वाग्रह विषयक घोषणापत्र के जीववैज्ञानिक खण्ड को लिखने के लिए यूनेस्को द्वारा आमंत्रित विशेषज्ञों ने निम्न प्रस्तावों को सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

१. वर्तमान विश्व के सभी लोग एक ही जाति – Homo sapiens – और एक ही मूल के हैं। यह विवाद का विषय है कि लोगों के विभिन्न समूह कब और कैसे उत्पन्न हुए।

२. लोगों के जीववैज्ञानिक अंतर आनुवंशिक संरचना के अंतरों और आनुवंशिक आधार पर पर्यावरण के प्रभाव द्वारा निर्धारित होते हैं। इनमे से अधिकांश अंतर दोनों ही तरह के कारकों के अन्योन्यप्रभाव का फल होते हैं।

३. प्रत्येक जन समुदाय में आनुवंशिक लक्षणों की व्यापक विविधता पाई जाती है। आनुवंशिक दृष्टि से विशुद्ध प्रजाति नाम की कोई चीज नही है।

४. भूमण्डल के विभिन्न भागों में रहनेवाले जन समुदायों के बीच शारीरिक लक्षणों के औसत आंकड़ो में पर्याप्त अंतर पाये जाते हैं। अनेक मामलों में इन अंतरों के मूल में आनुवंशिक तत्त्व भी होता है। प्रायः वे उन्हीं आनुवंशिक लक्षणों की विभिन्न आवृत्ति में व्यक्त होते हैं।

५. आनुवंशिक शारीरिक लक्षणों के आधार पर मानवजाति को महाप्रजातियों और इन्हें और अधिक संकीर्ण उपभेदों – प्रजातियों – मे (यहां प्रजाति अनेक जन समुदायों के समूह अथवा कभी-कभी एक समुदाय का सूचक है) वांटने के

विभिन्न प्रस्ताव पेश किये गये थे। इनमें प्रायः हमेशा कम से कम तीन महाप्रजातियां सामने आती हैं।

चूंकि प्रजातियों के वर्गीकरणों के लिए प्रयुक्त लक्षणों के भौगोलिक रूपभेद जटिल है और तीक्ष्ण अंतरों से रहित हैं, इसलिए ये वर्गीकरण, चाहे वे कैसे भी क्यों न हो, मानवजाति को कठोरतः विभाजित समूहो में वांटने का आधार नहीं बन सकते। मानव इतिहास की जटिलता के कारण प्रजातीय वर्गीकरण में कुछ समूहो का स्थान कठिनता से ही तय हो सकता है। यह वात अंतर्वर्ती स्थितिवाले जन समुदायो पर विशेष रूप से लागू होती है।

बहुत से मानवविज्ञानी, जो आदमियों की परिवर्तनशीलता के वड़े महत्त्व को पूर्णतः स्वीकारते हैं, समझते हैं कि इन वर्गीकरणों का वैज्ञानिक महत्त्व सीमित है और अत्यधिक सामान्यानुमानों का लालच पैदा करने की वजह से ये ख़तरनाक भी हैं।

एक ही प्रजाति अथवा जन समुदाय की विभिन्न व्यष्टियों के वीच के अंतर प्रायः प्रजातियों अथवा जन समुदायों के बीच अंतरो की अपेक्षा कहीं अधिक होते हैं।

प्रजाति को परिभाषित करने के लिए प्रयुक्त परिवर्तनशील विभेदकारी विशेषताएं या तो एक दूसरी से स्वतंत्र रूप से वंशागत होती हैं या प्रत्येक जन समुदाय के अंदर परस्पर संबंधों के भिन्न स्तर को द्योतित करती हैं। इसलिए अधिकाश व्यष्टियों के लक्षण-समूह प्रजाति की प्रारूपिक परिभाषा से मेल नहीं खाते।

६. पशुओं की भाति आदमियो के मामले में भी प्रत्येक जन समुदाय की आनुवंशिक संरचना प्राकृतिक वरण के विभिन्न कारकों के परिवर्तनकारी प्रभाव द्वारा निर्धारित होती है। ये कारक हैं प्राकृतिक वरण, जिसकी प्रक्रिया पर्यावरण के की ओर ले जाती है, अनुकूलन, आनुवाशिकता को निर्धारित करनेवाले डेसाक्सि-रिवोन्यूक्लिइक एसिड के अणुओं के रूपातरण के रूप में सायोगिक उत्परिवर्तन और अंततः गुणात्मक आनुवंशिक लक्षणों की आवृत्ति के अकस्मात परिवर्तन, जिनकी संभाव्यता जन समुदाय के आकार और इस जन समुदाय के अंदर परिवारो की संरचना पर निर्भर है।

कतिपय शारीरिक लक्षणों का मानव के अस्तित्व के लिए, चाहे उसका पर्यावरण कैसा भी क्यो न हो, सार्विक और बुनियादी जीववैज्ञानिक महत्त्व होता है। इन लक्षणों में वे अंतर शामिल नहीं हैं, जिन पर प्रजातीय वर्गीकरण आधारित है।

इसलिए जीवविज्ञान की दृष्टि से ये अंतर किसी प्रजाति की श्रेष्ठता अथवा हीनता का प्रमाण नहीं बन सकते।

७. मानव का विकास उसकी प्राथमिक महत्व की विशेषताओं को प्रदर्शित करता है।

आज सारी धरती पर फैले मानव का विगत स्थानांतर-गमनों और इसी प्रकार प्रवास क्षेत्र के फैलने अथवा सिकुड़ने से भरा पड़ा है। इसलिए मानव को अपने को सबसे विविध आवास परिस्थितियों के अनुकल ढालने की सामान्य क्षमता कुछ विशेष परिस्थितियों के ही अनुकूलन से कहीं अधिक है।

जान पड़ता है कि मानव द्वारा किसी भी क्षेत्र में प्राप्त सफलताएं अनेकों सहस्राब्दियों के दौरान यदि एकमात्रतः नहीं, तो मुख्यतः सांस्कृतिक उपलब्धियों के क्षेत्र में हासिल की गई हैं, न कि आनुवंशिकता के क्षेत्र में। यही कारण है कि वर्तमान मानव के लिए प्राकृतिक वरण की भूमिका बदल गई है।

आबादी की गतिशीलता के कारण और सामाजिक कारकों के प्रभावस्वरूप विभिन्न मानव-समूहों के सम्मिश्रण ने, जिसकी परिणति उत्पन्न अंतरों के मिटने में हुई, पशु जगत के इतिहास की अपेक्षा मानव के इतिहास में कहीं अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। विगत में प्रत्येक जन समुदाय और प्रत्येक प्रजाति को अनेक बार ऐसे सम्मिश्रणों के दौर से गुजरना पड़ा और यह प्रवृत्ति आज और भी ज़ोर पकड़ती जा रही है।

सम्मिश्रण में जो बाधाएं सामने आती हैं, वे भौगोलिक ही नहीं, सामाजिक और सांस्कृतिक भी होती हैं।

८. जन समुदायों के आनुवांशिक गुण सभी कालों में अस्थिर सतुलन की स्थिति में रहते हैं, जिसका कारण सम्मिश्रण और विभेदीकरण की उपर्युक्त क्रियाविधियों का प्रभाव है। निश्चित विशेषताओंवाले समुदायों के रूप में मानव प्रजातियां सतत विकास और ह्रास की स्थिति में रहती हैं।

अनेक पशु जातियों की अपेक्षा मानव प्रजातियां प्रायः कहीं कम स्पष्टता के साथ विभाजित हैं और उनकी घरेलू पशुओं की नसलों से तो किसी भी भांति तुलना नहीं की जा सकती, जिनका विकास कुछ निश्चित लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में सक्रिय वरण के प्रभावस्वरूप होता है।

९. यह कभी सिद्ध नहीं किया गया है कि सम्मिश्रण मानवजाति के लिए जीववैज्ञानिक दृष्टि से नकारात्मक भूमिका अदा करता है। इसके विपरीत सम्मिश्रण

विभिन्न मानव-समूहों के बीच जीववैज्ञानिक संपर्क बनाये रखने और अतएव विविधता के बावजूद मानवजाति को एकबद्ध करने में व्यापक सहायता देता है।

जीववैज्ञानिक क्षेत्र मे विवाह् के परिणाम पति-पत्नी के निजी आनुवंशिक गुणों पर निर्भर होते हैं, न कि उनकी प्रजाति पर। फलत: न तो अंतर-प्रजातीय विवाहों पर प्रतिबंध को और न ऐसे विवाहों के विरुद्ध परामर्श को ही किसी प्रकार उचित ठहराया जा सकता है।

१०. अपने आविर्भाव के क्षण से ही मानव को अनानुवंशिक अनुकूलन के लिए उत्तरोत्तर प्रभावी सांस्कृतिक साधन उपलब्ध होते रहे हैं।

११. सामाजिक तथा भौगोलिक बाधाओं को दूर करनेवाले सांस्कृतिक कारक वैवाहिक संबंधों के दायरे को व्यापक बनाते हैं और इस प्रकार आकस्मिक उतार-चढ़ाव को कम करते हुए जन समुदाय की आनुवंशिक संरचना को प्रभावित करते हैं।

१२. साधारणतया महाप्रजातियों के क्षेत्र अति व्यापक होते हैं और उनमे भाषा, अर्थव्यवस्था, संस्कृति, इत्यादि की दृष्टि से एक दूसरी से भिन्न एकाधिक जातियां रहती हैं।

कोई भी जातीय, धार्मिक, भौगोलिक, भाषायी अथवा सांस्कृतिक समूह स्वत: प्रजाति नही बन जाता। प्रजाति की धारणा केवल जीववैज्ञानिक गुणो से ही संबद्ध है।

एक ही भाषा, एक ही संस्कृतिवाले लोगों मे विवाह् संबंध आपस में ही करने की प्रवृत्ति होती है, जो एक ओर तो शारीरिक लक्षणों और दूसरी ओर भाषायी तथा सांस्कृतिक लक्षणों के बीच कुछ हद तक समरूपता को जन्म दे सकती है। *किंतु वास्तविक कार्य-कारण संबंध अभी किसी को ज्ञात नही हैं और इसलिए* सांस्कृतिक विशेषताओं को आनुवंशिक गुणो के साथ जोड़ने का कोई आधार नहीं है।

१३. अधिकांश प्रस्तावित प्रजातीय वर्गीकरणों में प्रजातियों के विभेदक लक्षणो में *मनोवैज्ञानिक गुणो को शामिल नही किया गया है।*

आजकल प्रयुक्त कतिपय मनोवैज्ञानिक जाचों के उत्तरों में एक ही जन समुदाय के सदस्यों द्वारा प्रदर्शित अंतर पर आनुवंशिकता का असर हो सकता है।

किंतु इन जांचों द्वारा परीक्षित लक्षणो के संबंध में मानव-समूहो में आनुवंशिक अंतरों का अस्तित्व कभी नही सिद्ध किया गया है। लेकिन साथ ही अंतरों पर प्राकृतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पर्यावरण का प्रभाव स्पष्टत: उभरकर सामने आया है।

उस प्रश्न का अध्ययन इसलिए कठिन हो जाता है कि सास्कृतिक दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न जन समुदायों के सामान्य बौद्धिक विकास की तथाकथित जांचों के परिणामों के बीच पाये जानेवाले औसत अंतरों में आनुवंशिकता के संभावित अंश को पृथक कर पाना अत्यंत जटिल कार्य है।

कतिपय शारीरिक लक्षणों की भांति बौद्धिक योग्यताओं के विकास की आनुवंशिक संभावनाएं भी सार्विक महत्व के जीववैज्ञानिक गुणों की श्रेणी मे आती हैं, क्योंकि वे किसी भी प्राकृतिक और सांस्कृतिक पर्यावरण में मानवजाति के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं।

माना जा सकता है कि आज हमारी धरती पर रहनेवाली सभी जातियों के पास सभ्यता के किसी भी स्तर को पाने के लिए एक सी जीववैज्ञानिक संभावनाएं है और विभिन्न जातियों की उपलब्धियों के बीच अंतर का कारण पूर्णतः उनकी संस्कृति के इतिहास में ढूंढ़ा जाना चाहिये।

कभी-कभी किसी जाति पर कुछ विशेष मनोवैज्ञानिक गुण आरोपित किये जाते है। ऐसे दावों का आधार कितना मजबूत है, इसकी गहराई में गये बिना भी तब तक इन गुणों को आनुवंशिकता से संबद्ध नही मानना चाहिये, जब तक एतद्विषयक प्रमाण नही मिल जाते।

शारीरिक लक्षणों की भांति सामान्य बौद्धिक विकास की आनुवंशिक संभावनाओं और सांस्कृतिक उपलब्धियां प्राप्त करने की योग्यताओं के सिलसिले में भी "ऊंची" और "नीची" प्रजातियों की अवधारणा को उचित नही ठहराया जा सकता।

उपरिलिखित जीववैज्ञानिक तथ्य नसलवादी प्रस्थापनाओं का पूर्णतः खंडन करते है। नसलवादी प्रस्थापनाएं किसी प्रकार के वैज्ञानिक आधार का दावा नही कर सकती। इसलिए यह मानवविज्ञानियों का कर्त्तव्य है कि वे अवैज्ञानिक लक्ष्यों के लिए वैज्ञानिक शोधों के परिणामों के विरूपण का यथाशक्ति विरोध करें।

गोष्ठी में निम्न विशेषज्ञों ने भाग लिया :

प्रो० नाइगेल बर्निकोट, मानवविज्ञान संकाय, यूनीवर्सिटी कालेज, लंदन (ग्रेट ब्रिटेन)।

प्रो० तादेउश बेलीत्स्की, मानवविज्ञान सस्थान, पोलिश विज्ञान अकादमी, व्रोत्स्लाव (पोलैंड)।

प्रो० जां बेनुभा, अध्यक्ष, मानवविज्ञान विभाग, मांट्रियल विश्वविद्यालय, मांट्रियल (कनाडा)

डा० ए० थोयो, डायरेक्टर, फेडरल मलेरिया शोध संस्थान; अध्यक्ष, रोगविज्ञान तथा रक्तविज्ञान विभाग, लागोस विश्वविद्यालय, लागोस (नाइजीरिया)

प्रो० व० व० बुनाक, जातिविज्ञान संस्थान, विज्ञान अकादमी, मास्को (सोवियत संघ)

प्रो० या० अ० वाल्शिक, मानवविज्ञान तथा आनुवंशिकी विभाग, कामेन्स्की विश्वविद्यालय, ब्रातिस्लावा (चेकोस्लोवाकिया)

प्रो० सांतयागो गेनोवेस (उपाध्यक्ष), इतिहास संस्थान, विज्ञान संकाय, मेक्सिको विश्वविद्यालय (मेक्सिको)

प्रो० ग० फ़० देबेत्स (अध्यक्ष), जातिविज्ञान संस्थान, विज्ञान अकादमी, मास्को (सोवियत संघ)

डा० अदेलेइद द दियास-ऊंग्रिया, क्यूरेटर, प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय, कराकास (वेनेजुएला)

प्रो० रोबेर जेस्सेन, डायरेक्टर, मानवविज्ञान शोध केंद्र, मानव संग्रहालय, पेरिस (फ़ांस)

प्रो० जा इयेर्नो (वैज्ञानिक संचालक), मानवविज्ञान प्रयोगशाला, विज्ञान संकाय, पेरिस विश्वविद्यालय (फ़ांस) तथा समाजशास्त्र संस्थान, स्वतंत्र ब्रसेल्स विश्वविद्यालय, ब्रसेल्स (बेल्जियम)

डा० याइया कान (उपाध्यक्ष), डायरेक्टर, सेनेगाल राष्ट्रीय रुधिराधान केंद्र, दकार (सेनेगाल)

प्रो० कार्लटन एस० कुन, क्यूरेटर, *विश्वविद्यालय संग्रहालय, पेंसिल्वानिया* विश्वविद्यालय, फ़िलाडेल्फिया (सं० रा० अ०)

प्रो० रामकृष्ण मुकर्जी (उपाध्यक्ष), अध्यक्ष, समाजशास्त्र शोध विभाग, भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता (भारत)

प्रो० बर्नार्ड रेश, प्राणिविज्ञान सस्थान, विल्हेल्म विश्वविद्यालय, म्यूंस्टेर (वेस्टफ़ालिया, संघीय जर्मनी)

प्रो० या० या० रोगीन्स्की, अध्यक्ष, मानवविज्ञान विभाग, मास्को विश्वविद्यालय, मास्को (सोवियत संघ)

प्रो० फ़ासिस्को सल्ज़ानो, प्रकृतिविज्ञान सस्थान, पोर्तो अलेग्रे, रियो ग्रांदे दो सूल (ब्राज़ील)

प्रो० आल्फ़ सोम्मेरफ़ेल्ट (उपाध्यक्ष), आनरेरी प्रोरेक्टर, ओस्लो विश्वविद्यालय, ओस्लो (नार्वे)

प्रो० जेम्स स्पूलर (उपाध्यक्ष), मानवविज्ञान संकाय, मिचीगन विश्वविद्यालय, एन आर्वोर (सं० रा० अ०)

प्रो० हिसाशी सुज़ूकी, मानवविज्ञान विभाग, विज्ञान सकाय, टोकियो विश्वविद्यालय, टोकियो (जापान)

डा० जोसेफ़ वाइनर, लंदन स्कूल आफ़ हाइजीन एंड ट्रापिकल मेडिसिन, लंदन विश्वविद्यालय, लंदन (ग्रेट ब्रिटेन)

डा० व० प० याकीमोव, डायरेक्टर, मानवविज्ञान संस्थान, मास्को विश्वविद्यालय, मास्को (सोवियत संघ)

प्रजाति और नसली पूर्वाग्रह विषयक घोषणापत्र

(यूनेस्को। पेरिस, २६ सितंबर, १९६७)

१. सभी लोग स्वतंत्र और मर्यादा एवं अधिकारों की दृष्टि से समान पैदा होते हैं—सारे विश्व में घोषित यह जनवादी सिद्धांत उन सभी जगहों पर ख़तरे में है, जहां राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक असमानताएं मानव संबंधों को प्रभावित करती है। सभी लोगों की समान मर्यादा को स्वीकार करने में नसलवाद बहुत ही गंभीर बाधा है। आधुनिक विश्व में नसलवाद का प्रकोप जारी है। एक गंभीर सामाजिक परिघटना के रूप में वह मानव से संबंधित सभी विज्ञान शाखाओं के शोधकर्ताओं के ध्यान की अपेक्षा करता है।

२. नसलवाद उनके विकास में बाधा डालता है, जो उससे पीड़ित हैं, उन्हें भ्रष्ट बनाता है, जो उसका प्रचार करते हैं। वह जातियों के बीच फूट पैदा करता है, अंतर्राष्ट्रीय तनाव बढाता है और विश्वशाति के लिए ख़तरे का कारण बनता है।

३. सितंबर, १९६७ में पेरिस में एकत्र विशेषज्ञों की गोष्ठी ने स्वीकार किया कि नसलवादी सिद्धांतों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। उसने १९५०–१९५१ के प्रजाति तथा प्रजातीय विभेद विषयक घोषणापत्र के जीववैज्ञानिक पहलुओं पर पुनर्विचार के लिए १९६४ में मास्को में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठी द्वारा स्वीकृत प्रस्थापनाओं का अनुमोदन किया। निम्न प्रस्थापनाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है:

क) वर्तमान विश्व में सभी लोग एक ही जीववैज्ञानिक जाति और एक ही मूल के हैं।

ख) मानवजाति का प्रजातियों में विभाजन काफ़ी सीमा तक प्रतिबद्ध और मनमाना है और किसी भी अर्थ में उनकी असमानता का परिचायक नहीं है। अनेक मानवविज्ञानी आदमियों की परिवर्तनशीलता के बड़े महत्व को स्वीकार करते

हुए यह मत भी प्रकट करते हैं कि प्रजातियों में विभाजन का सीमित वैज्ञानिक महत्व है और अत्यधिक सामान्यानुमानों को जन्म दे सकता है।

ग) आधुनिक जीवविज्ञान इसकी कोई गुंजाइश नहीं देता कि सांस्कृतिक प्रगति के अंतरों को आनुवंशिक गुणों के अंतरों से संबंधित माना जाये। प्रगति के अंतरों का कारण केवल संस्कृति के इतिहास में ही ढूंढ़ा जाना चाहिए। विश्व के सभी जनों के पास सभ्यता के किसी भी स्तर को हासिल करने के लिए एक सी जीववैज्ञानिक संभावनाएं हैं।

नसलवाद मानव-जीवविज्ञान संबंधी तथ्यों को धृष्टतापूर्वक अयथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है।

४. तथाकथित नसली संबंधों के सिलसिले में मानवजाति के समक्ष उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का मूल जीववैज्ञानिक न होकर सामाजिक है। सबसे मुख्य समस्या नसलवाद है, जो इस मिथ्या प्रतिपत्ति पर आधारित समाजविरोधी कार्रवाइयों और धारणाओं में व्यक्त होता है, जिसके अनुसार विभिन्न मानव-समूहों के बीच भेदभावपूर्ण संबंध जीवविज्ञान की दृष्टि से सर्वथा न्यायसंगत है।

५. मानव-समूह सामान्यतः अपने गुणों का मूल्याकन अन्य समूहों के गुणो से तुलना के रूप में किया करते हैं। नलसवाद का मिथ्या दावा है कि विज्ञान उनकी स्थायी तथा जन्मजात सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओं के अनुसार समूहों के अधिश्रेणिक विभाजन का आधार प्रस्तुत करता है। इस प्रकार वह वर्तमान अंतरों को अपरिवर्तनीय सिद्ध करने के लिए प्रयत्नशील है, ताकि समूहों के वर्तमान संबंधों को शाश्वत बनाया जा सके।

६. चूंकि नसलवाद के जीववैज्ञानिक सिद्धांतों के मिथ्यापन का भंडाफोड़ हो चुका है, इसलिए वह मानव-समूहों की असमानता को उचित ठहराने के लिए नयी-नयी चालें सोच रहा है। समूहों के बीच विवाह संबंधों की अनुपस्थिति को आधार बनाकर (यह अनुपस्थिति काफ़ी हद तक स्वयं उसके द्वारा पैदा की गयी परिस्थितियों का नतीजा है) वह इस दावे के पक्ष में दलील करता है कि विवाह संबंधों की अनुपस्थिति का कारण जीववैज्ञानिक अंतर है। ज्यों-ज्यों उसके लिए यह सिद्ध करना असंभव होता गया है कि समूहो मे अंतरो का आधार जीववैज्ञानिक है, त्यों-त्यों वह अन्य प्रमाणों का सहारा लेने लगा है, जैसे दैव इच्छा, सांस्कृतिक अंतर, विभिन्न शैक्षिक स्तर या ऐसा कोई और सिद्धात, जो नसलवादी पूर्वाग्रहों के छिपाने में समर्थ हो। इस प्रकार आधुनिक विश्व में नसलवाद के फलस्वरूप पैदा होनेवाली बहुत सी समस्याओ की जड़ उसकी नग्न अभिव्यक्ति ही नहीं, वरन

जो लोग नसलवादी आधार पर भेदभाव बरतते हैं, पर उसे स्वीकार नहीं करना चाहते, उनकी कार्रवाइयां भी हैं।

७. नसलवाद की ऐतिहासिक जड़ें हैं। यह कोई सार्विक परिघटना नहीं है। अनेक आधुनिक समाजों और संस्कृतियों में उसके अत्यंत क्षीण चिह्न ही दिखायी देते हैं। अनेक दीर्घ ऐतिहासिक चरण नसलवाद से मुक्त रहे हैं। नसलवाद के अनेक रूप विजयों द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों, जैसे उदाहरण के लिए, नयी दुनिया में रेड इंडियनों की अवस्था, नीग्रो लोगों की दासता को उचित ठहराने की कोशिशों और पश्चिम में उत्पन्न प्रजातीय असमानता विषयक धारणाओं और इसी प्रकार औपनिवेशिक संबंधों से पैदा होते हैं। अन्य उदाहरणों में यहूदीविरोध का नाम लिया जा सकता है, जिसने वहां विशेष भूमिका अदा की, जहां अनेक समाजों की सभी समस्याओं और संकटों का उत्तरदायी यहूदियों को ठहराया गया।

८. बीसवीं सदी की उपनिवेशवादविरोधी क्रांति ने नसलवाद के अभिशाप के निर्मूलन के लिए नयी संभावनाएं प्रस्तुत कीं। अनेक भूतपूर्व पराधीन देशों में लोगों को, जिन्हें हीन कोटि का माना जाता था, पूर्ण राजनीतिक अधिकार मिले। इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के कार्यकलाप में पराधीन देशों के समानाधिकार पर आधारित सहभाग ने नसलवाद की जड़ पर कुठाराघात किया।

९. किन्तु कतिपय समाजों में कुछ हलकों ने, जो पहले स्वयं नसलवाद के शिकार रह चुके थे, अपने स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान नसलवादी सिद्धांत अपना लिये। यह एक अनुषंगी परिघटना है, जिसका मूल मानव की समानता की आकांक्षा में ढूंढ़ा जाना चाहिये, जिससे उसे नसलवादी सिद्धांत तथा कार्यों ने पहले वंचित किया था। जो भी हो, इस प्राथमिक शोषण से उत्पन्न नसली विचारधारा के नये रूपों का कोई जीववैज्ञानिक आधार नहीं है। ये राजनीतिक संघर्ष का परिणाम और अवैज्ञानिक हैं।

१०. नसलवाद को बेनकाब करने के लिए यही काफी नहीं कि जीवविज्ञानी उसके मिथ्यापन को दर्शायें। समाजशास्त्रियों एवं मनोविज्ञानियों द्वारा उसके प्रकट होने के कारणों का विवेचन भी उतना ही आवश्यक है। सामाजिक ढांचा हमेशा एक महत्वपूर्ण कारक होता है। फिर भी एक ही सामाजिक ढांचे के अन्तर्गत व्यक्तिगत गुणों एवं जीवन परिस्थितियों को देखते हुए कुछ पृथक व्यक्तियों के नसली व्यवहार के बारे में बड़े अन्तर हो सकते हैं।

११. विशेषज्ञों की समिति नसली पूर्वाग्रहों के सामाजिक कारणों के बारे में निम्न निष्कर्षों पर पहुंची है:

क) नसलवाद के सामाजिक और आर्थिक कारण मुख्यतया उन उपनिवेशवादी समाजों में पैदा होते हैं, जिनमे सत्ता और संपत्ति के मामले में भारी असमानता पायी जाती है। उन्हें उन नागर क्षेत्रों में भी सिर उठाते देखा जा सकता है, जहां गेटो (ghetto), हैं, जिनके निवासी रोजगार और आवास पाने के मामले में, राजनीति, शिक्षा और न्याय के क्षेत्र मे समानाधिकारों से वंचित हैं। अनेक समाजों में जो सामाजिक अथवा आर्थिक कार्य आचारविरुद्ध अथवा उनके सदस्यो की मर्यादा से नीचे समझे जाते हैं, उन्हें इतर मूल के समूहो को सौंप दिया जाता है, और क्योंकि वे इन कार्यों को करते हैं, इसलिए उन पर हंसा जाता है, उनकी निन्दा की जाती है, उन्हें उत्पीड़न किया जाता हे।

ख) जिन्हें निजी जीवन में आघात सहने पड़ते हैं, वे लोग नसली पूर्वाग्रहों से विशेष रूप से प्रभावित हो सकते हैं और उनमें उनके प्रकट होने की अधिक सभावना है। कुछ विशेष प्रकार के छोटे संगठन और सामाजिक आन्दोलन कभी-कभी नसली पूर्वाग्रहों के रक्षक और प्रचारक का काम करते हैं। किन्तु इन पूर्वाग्रहों की जड़ समाज के सामाजिक और आर्थिक ढाचे में ही है।

ग) नसलवाद का एक गुण हे अपने आपको आगे धकेलना। भेदभाव किसी एक मानव-समूह को समानाधिकारों से वंचित करके इस समूह के गिर्द ही समस्या खड़ी कर देता है। फिर उत्पन्न स्थिति के लिए उसी समूह को दोषी ठहराया जाता है, जिसकी परिणति नये नसलवादी सिद्धांत के जन्म में होती है।

१२. नसलवाद का मुक़ाबला करने के मुख्य साधन हैं पूर्वाग्रहों को जन्म देनेवाली सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन, पूर्वाग्रहों से दूषित धारणाओंवाले लोगों की हरकतों का सक्रिय विरोध और स्वयं इन मिथ्या धारणाओं के विरुद्ध संघर्ष।

१३. ज्ञात है कि सामाजिक व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन लाने के लिए, जो नसली पूर्वाग्रहो को दूर करने में समर्थ हों, राजनीतिक ढंग के समाधान की अपेक्षा हो सकती है। किन्तु साथ ही यह भी ज्ञात है कि नसली पूर्वाग्रहों के निर्मूलन के लिए प्रगति के कुछ साधन, जैसे शिक्षा और अन्य सामाजिक तथा आर्थिक क़दम, जन सूचना के माध्यम और क़ानून, तुरंत और कारगर रूप से व्यवहार में लाये जा सकते हैं।

१४. शिक्षा और अन्य सामाजिक-आर्थिक कदम व्यापक परस्पर समझ पर पहुंचने और सभी मानवीय संभावनाओं की पूर्ति के सबसे कारगर साधनों में हो सकते हैं। मगर साथ ही उन्हें असमानता और भेदभाव को शाश्वत बनाने के

लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है। अतः आवश्यक है कि सभी देशों में शिक्षा और सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव के साधन निम्न दिशाओं में प्रयुक्त हों:

क) स्कूल इसका सतत ध्यान रखें कि उनके पाठ्यक्रम प्रजातियों और मानव एकता के बारे में वैज्ञानिक तथ्यों को प्रतिबिंबित करें और न तो पाठ्यपुस्तकों में और न कक्षाओं में ही, किसी भी जाति के बारे में अपमानजनक बात न कही जाये।

ख) चूंकि सामान्य तथा विशेषीकृत शिक्षा द्वारा दिये गये ज्ञान का महत्व तकनीकी प्रगति के साथ निरंतर बढ़ता जा रहा है, इसलिए स्कूलों और अन्य शिक्षा संस्थाओं के द्वार बिना किसी प्रतिबंध अथवा भेदभाव के सभी समूहों के लिए खुले रहने चाहिएं।

ग) इसके अतिरिक्त, यदि ऐतिहासिक कारण से किन्हीं समूहों का शैक्षिक तथा आर्थिक स्तर औरों से निम्न है, तो समाज को इस स्थिति को सुधारने के लिए क़दम उठाने चाहिए। जहां तक संभव हो, इन क़दमों का उद्देश्य यह होना चाहिए कि गरीबी जन्य कठिनाइयां बच्चों के भाग्य पर असर न डालें।

सभी प्रकार की शिक्षा में अध्यापकों की महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए उनके प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। अध्यापकों को आत्मालोचन करना चाहिए कि कहीं उनके समाज में पाये जानेवाले पूर्वाग्रह, यदि कोई हैं, तो कहीं उनमे भी घर नहीं कर गये हैं। इन पूर्वाग्रहों के निर्मूलन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

१५. रोजगार तथा रिहायशी मामलों से संबंधित सरकारी विभागों और अन्य संगठनों को नसलवाद का शिकार बने लोगों की आवास परिस्थितिया सुधारने और रोज़गार पाने की संभावना बढ़ाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए। ये क़दम नसलवाद के कुपरिणामों को कम ही नहीं बनायेंगे, अपितु नसलवादियो की हरक़तों एवं व्यवहार पर लगाम लगाने का काम भी कर सकेंगे।

१६. यद्यपि ज्ञान तथा परस्पर समझ के प्रसार की दृष्टि से जन सूचना के साधनो का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, फिर भी उनकी वास्तविक संभावनाएं अभी पूरी तरह ज्ञात नहीं हैं। नसली पूर्वाग्रहों और नसली भेदभाव के संदर्भ मे धारणाओं के बनने और आचार-व्यवहार पर इन साधनों के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए उनके सामाजिक प्रयोग के बारे मे खोजें करना आवश्यक है। चूंकि जन सूचना के साधनो की पहुंच आबादी के व्यापक हलक़ो तक है, जो शिक्षा स्तर तथा सामाजिक स्थिति की दृष्टि से बहुत भिन्न है, इसलिए वे नसली पूर्वाग्रहों को प्रोत्साहित करने या उनके विरुद्ध संघर्ष करने मे निर्णयकारी भूमिका अदा कर

सकते हैं। जन सूचना के क्षेत्र मे काम करनेवाले व्यक्तियों की हर चेष्टा का उद्देश्य मानव-समूहों के बीच परस्पर समझ बढ़ाना होना चाहिए। उन्हे किसी भी जाति के बारे में घिसी-पिटी, उपहासजनक बातें नही कहनी चाहिए। यदि विषय से प्रत्यक्ष संबंध न हो, तो प्रेस को प्रजातिक मूल का उल्लेख करने से कतराना चाहिए।

१७. क़ानून सभी लोगों की समानता सुनिश्चित करनेवाले सबसे महत्वपूर्ण साधनों की कोटि में आता है और नसलवाद के विरुद्ध संघर्ष करने का एक सबसे प्रभावशाली हथियार है।

१० दिसंबर, १६४८ का मानव अधिकार घोषणापत्र और उससे संबंधित परवर्ती अंतर्राष्ट्रीय समझौते तथा अनुबंध राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नसलवादी ढंग के सभी अन्यायों के साथ संघर्ष में कारगर सहायता दे सकते हैं।

राजकीय क़ानून एक ऐसा कारगर साधन है, जो नसली भेदभाव पर आधारित नसलवादी प्रचार और कार्रवाइयों को अवैध घोषित कर सकता है। इसके अलावा इस क़ानून में व्यक्त नीति का पालन न्यायाधीशों और न्यायालयों के लिए ही नही, जो उसे जीवन में चरितार्थ करते हैं, अपितु सभी राजकीय विभागों एवं संगठनों के लिए अनिवार्य होना चाहिए, चाहे उनका स्तर और काम का स्वरूप कैसा भी क्यों न हो।

यह आशा करना व्यर्थ होगा कि क़ानून पूर्वाग्रहों को तत्काल मिटा सकता है। किन्तु पूर्वाग्रहों पर आधारित कार्रवाइयों से रक्षा का साधन और न्यायालयों की प्रतिष्ठा द्वारा समर्थित नैतिक कारक होने के कारण वह अन्ततः दृष्टिकोणो को बदलवाने मे सहायक सिद्ध हो सकता है।

१८. कभी-कभी सत्ताधारी हलक़े किसी न किसी रूप में भेदभाव का शिकार बनी जातियों को इस शर्त पर अपने बीच घुलने-मिलने देते हैं कि वे अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं को पूर्णतया त्याग देंगे। किंतु यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि अपने सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखने के इन जातियों के प्रयत्नों को बढ़ावा दिया जाये। यह उन्हे सबकी साझी मानव संस्कृति मे बेहतर योग देने की संभावना देगा।

१९. वर्तमान विश्व में नसली पूर्वाग्रह और नसली भेदभाव ऐतिहासिक तथा सामाजिक घटनाओं से पैदा होते हैं; उनका असली रूप छिपाने के लिए विज्ञान की आड़ ली जाती है। इसलिए जीवविज्ञानियों, समाजशास्त्रियों, दर्शनशास्त्रियों और इनके निकट की विज्ञानशाखाओं के विशेषज्ञों को हर संभव प्रयत्न करना

चाहिए कि जो लोग नसली पूर्वाग्रहों का प्रचार करने और भेदभावों को प्रोत्साहन देने का इरादा रखते हैं, वे उनके अनुसंधानों को तोड़-मरोड़ कर इस्तेमाल न कर पायें।

घोषणापत्र को सर्वसम्मति से पारित देनेवाले विशेषज्ञों की सूची:

डा० अब्दल रहीम (राजनीति विभाग, सामाजिक-आर्थिक संकाय, ख़ारतूम विश्वविद्यालय, ख़ारतूम, सूडान)

प्रो० जे० वलादिये (मानविकी संकाय, पेरिस विश्वविद्यालय, पेरिस, फ़्रांस)

प्रो० एस० ओ० बोरजा (समाजशास्त्र विभाग, गुआनाबार विश्वविद्यालय, रियो द जानेरो, ब्राज़ील)

प्रो० एल० ब्राइटह्वाइट (समाजशास्त्र विभाग, वेस्ट इंडीज़ विश्वविद्यालय, मोना, जमायका)

प्रो० एल० ब्रूम (समाजशास्त्र विभाग, टेक्सास विश्वविद्यालय, ऑस्टिन, सं० रा० अ०)

प्रो० ग० फ० देबेत्स (जातिविज्ञान संस्थान, विज्ञान अकादमी, मास्को, सोवियत संघ)

प्रो० इ० जोर्जेविच (विधि संकाय, बेल्ग्रेड विश्वविद्यालय, बेल्ग्रेड, यूगोस्लाविया)

प्रो० के० एन० फ़र्गूसन (डीन, विधि संकाय, हार्वर्ड विश्वविद्यालय, वाशिंगटन, सं० रा० अ०)

डा० डी० पी० घई (विकास शोध संस्थान, नैरोबी, केनिया)

संदर्भ

1. K. Marx, F. Engels, *Die Deutcshe Ideologie.*
(कार्ल मार्क्स, फ़्रेडरिक एंगेल्स, "जर्मन विचारधारा")

2. Н. Н. Чебоксаров, Основные принципы антропологических классификаций. В сборнике «Происхождение человека и древнее расселение человечества», изд. АН СССР, 1951, стр. 291—322.
(*न० न० चेबोक्सारोव, "मनुष्य का उद्गम और आबादी का प्राचीन देशातरगमन" नामक निबंध-संग्रह में "मानववैज्ञानिक वर्गीकरण के मूल सिद्धात" शीर्षक निबंध, सोवियत विज्ञान अकादमी द्वारा रूसी में प्रकाशित, १९५१*)

3. Я. Я. Рогинский, М. Г. Левин, Антропология, изд. 2, «*Высшая школа*», 1963, стр. 313—477.
(या० या० रोगीन्स्की, म० ग० लेविन, "मानवविज्ञान", दूसरा सस्करण, *वीस्शाया श्कोला*, १९६३)

4. В. В. Бунак, Человеческие расы и пути их образования. «Советская этнография», 1956, № 1, стр. 86—105.
(व० व० बुनाक, "मानव-प्रजातिया और वे किस प्रकार निर्मित हुईं," "सोव्येत्स्काया एत्नोग्राफ़िया", १९५६, अंक १)
Г. Ф. Дебец, О принципах классификации человеческих рас, «Советская этнография», 1956, № 4, стр. 129—142.
(ग० फ़० देबेत्स, "*प्रजातियों के वर्गीकरण के सिद्धात*", "*सोव्येत्स्काया* एत्नोग्राफिया", १९५६, अंक ४)

5. P. C. Biswas, *Present State of the Problem of Correlation between Racial and Cast Differentiation in India*, VII Congress International des Sciences Anthropologiques et Ethnologiques, Moscou, 1964, pp. 79-87.
(पी० सी० विश्वास, "भारत में प्रजातीय तथा जातिगत विभेदिकरण में अन्योन्यसंबंध की समस्या की वर्तमान अवस्था")

6. Charles Darwin, *The Descent of Man and Selection in Relation to Sex*, London, 1901.
(चार्ल्स डार्विन, "मनुष्य का उद्गम और लिंग के संबध में वरण, लंदन, १९०१)

7. M. Nesturkh, *The Origin of Man*, Progress Publishers, M., 1967.
(म० नेस्तुर्ख़, "मानवोत्पत्ति", प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९६७)
М. Ф. Нестурх, Приматология и антропогенез, М., 1960.
("प्राइमेटविज्ञान और मानवोत्पत्ति", मास्को, १९६०)

А. А. Величко, Связь динамики природных изменений в плейстоцене с развитием первобытного человека. «Вопросы антропологии», 1971, № 37, стр. 3—18.
(अ० अ० वेलीच्को, "अतिनूतनयुगीन प्राकृतिक परिवर्तन प्रक्रियाओं का आदिम मानव के विकास से संबध", "वोप्रोसी अंत्रोपोलोगिई", १९७१, अंक ३७)

8. Е. В. Жиров, Костяки из грота Мурзак-Коба, «Советская археология», 1940, № 5, стр. 179—186.
(ये० व० जीरोव, "मुर्ज़ाक-कोबा गुफा से प्राप्त कंकाल", "सोव्येत्स्काया आर्ख़ेओलोगिया", १९४०, अंक ५)

9. Г. Ф. Дебец, Тарденуазский костяк из навеса Фатьма-Коба в Крыму, «Антропологический журнал», 1936, № 2, стр. 144—165.

(ग० फ० देवेत्स, "क्रीमिया की कातमा-कोबा गुफा में तार्देनुआर्जियाई कंकाल", "मर्वोपोलोगोनिस्कीय जुरनाल", १९३६, अंक २)

10. Г. Ф. Дебец, Палеонтологические находки в Костенках, «Советская этнография», 1955, № 1, стр. 43—53.
(ग० फ० देवेत्स, "कोस्त्योंकी में जीवाश्मीय प्राप्ति", "सोवेत्स्काया एत्नोग्राफिया", १९५५, अंक १)

В. П. Якимов, Скелет ребенка из Костенок, «Сборник Музея антропологии и этнографии АН СССР», 1957, № 2, стр 500—529.
(व० प० याकीमोव, "कोस्त्योंकी में प्राप्त बाल कंकाल", "स्बोर्निक मुजेया अंत्रोपोलोगिई इ एत्नोग्राफ़िई" अ०-एन० एस० एस० एस० आर०", १९५७, अंक २)

11. Я. Я. Рогинский, Морфологические особенности черепа ребенка из позднемустьерского слоя пещеры Староселье, «Советская этнография», 1954, № 1, стр. 27—47.
(या० या० रोगीन्स्की, "स्तारोसेल्ये गुफा के उत्तर मुस्टेरियाई संस्तर में प्राप्त बालक की खोपड़ी के आकारिकीय विशेषताएं", "सोव्येत्स्काया एत्नोग्राफिया", १९५४, अंक १)

Г. Ф. Дебец, Скелет поздне-палеолитического человека из погребения на Сунгирской стоянке. «Советская археология», 1967, № 3, стр. 160—164.
(ग० फ़० देवेत्स, "सुंगीर बस्ती की एक क़ब्र से प्राप्त उत्तर-पुरापाषाण-कालीन मानव कंकाल" "सोवेत्स्काया आर्ख़ेओलोगिया", १९६७, अंक ३)

О. Н. Бадер, Человек палеолита у северных пределов ойкумены, «Природа», 1971, № 15, стр. 36—39.
(ओ० न० बादेर, "उत्तरी इलाकों में पुरापाषाणयुगीन मानव", "प्रिरोदा", १९७१, अंक १५)

12. М. А. Гремяцкий, Подкумская черепная крышка и ее морфологические особенности, «Русский антропологический журнал», 1922, № 12, вып. 1—2, стр. 92—110 и 237—239.

(म० ग्र० ग्रेम्यात्स्की, "पोदकूमोक में प्राप्त कपाल-तोरण और उसकी आकारिकीय विशेषताएं", "रूस्स्की अंत्रोपोलोगीचेस्की जुरनाल", १६२२, अंक १२)

М. А. Гремяцкий, Структурные особенности подкумского черепа и его древность, «Антропологический журнал», 1934, № 3, стр. 127—141.
(म० ग्र० ग्रेम्यात्स्की, "पोदकूमोक कपाल की संरचनात्मक विशेषताएं और उसकी आयु", "अंत्रोपोलोगीचेस्की जुरनाल", १६३४, अंक ३)

13. Г. А. Бонч-Осмоловский, Грот Киик-Коба, «Палеолит Крыма», вып. 1, 1940; Кисть ископаемого человека из грота Киик-Коба, «Палеолит Крыма», вып. 2, 1941; Скелет стопы и голени ископаемого человека из грота Киик-Коба, «Палеолит Крыма», вып. 3, 1953.
(ग० ग्र० बोंच-ग्रोस्मोलोव्स्की, "कीईक-कोवा गुफा", "पालेग्रोलीत क्रीमा", ग्रंक १, १६४०; कीईक-कोवा के फ़ासिल मानव का हाथ", "पालेग्रोलीत क्रीमा", ग्रंक २, १६४१; "कीईक-कोबा गुफा के फ़ासिल मानव के पैर तथा टांग का कंकाल", "पालेग्रोलीत क्रीमा", ग्रंक ३, १६५३)

14. Тешик-Таш, Палеолитический человек. Сборник под редакцией М. А. Гремяцкого и М. Ф. Нестурха. М., 1949.
("तेशीक़-ताश, पुरापाषाणकालीन मानव" संग्रह, संपादक: म० ग्र० ग्रेम्यात्स्की तथा म० फ़० नेस्तुर्ख़, मास्को, १६४६)

В. В. Бунак, Муляж мозговой полости палелитического детского черепа из грота Тешик-Таш, «Сборник Музея антропологии и этнографии», т. XII, М., 1951.
(म० फ़० वुनाक, "तेशीक़-ताश गुफा से प्राप्त पुरापाषाणकालीन वालक के कपाल का मस्तिष्क साचा", "स्वोर्निक मुज़ेया ग्रंत्रोपोलोगिई इ एत्नोग्राफ़िई", खंड १२, मास्को, १६५१)

В. В. Бунак, Череп человека и стадии его формирования у ископаемых людей и современных рас, «Труды института этнографии АН СССР», Новая серия, т. XLIX, 1959.
(व० व० वुनाक, "मानव कपाल और फ़ासिल मानव तथा आधुनिक प्रजातियों में उसकी विरचना की अवस्थाएं", "त्रदी इंस्तितूता एत्नोग्राफ़िई ग्र०-एन० एस० एम० एस० एर०", नोवाया सेरिया, खंड ४६, १६५६)

15. Я Я. Рогинский, Теория моноцентризма и полицентризма в проблеме происхождения современного человека и его рас, М., 1949.

(या० या० रोगीन्स्की, "आधुनिक मानव और उसकी प्रजातियों की उत्पत्ति की समस्या में एककेंद्रवादी तथा बहुकेंद्रवादी सिद्धांत", मास्को, १९४९)

Я. Я. Рогинский, Некоторые проблемы происхождения человека, «Советская этнография», 1956, № 4, стр. 11—17.

(या० या० रोगीन्स्की, "मनुष्य के उद्गम से संबंधित कुछ समस्याएं", "सोव्येत्स्काया एत्नोग्राफ़िया", १९५६, अंक ४)

16. М. Ф. Нестурх, Антропогенез. В книге: В. В. Бунак, М. Ф. Нестурх и Я. Я. Рогинский, Антропология, М., 1941, стр. 13—131.

(म० फ० नेस्तुर्ख़, "मानवोत्पत्ति", व० व० बुनाक, म० फ़० नेस्तुर्ख़ तथा या० या० रोगीन्स्की द्वारा लिखित "मानवविज्ञान" पुस्तक में, मास्को, १९४१)

17. В. П. Якимов, «Атлантроп» — новый представитель древнейших гоминид, «Советская этнография», 1956, № 3, стр. 110—122.

(व० प० याकीमोव, "एटलेन्थ्रोपस – प्राचीनतम प्राक्-मानवों का एक नया प्रतिनिधि", "सोवेत्स्काया एत्नोग्राफ़िया", १९५६, अंक ३)

18. M. Nesturkh, *The Origin of Man*,

(म० नेस्तुर्ख़, "मानवोत्पत्ति"

19. М. Ф. Нестурх, Ископаемые антропоиды и древнейшие гоминиды, «Успехи современной биологии», 1938, т. IX, вып. 2, стр. 161—202.

(म० फ़० नेस्तुर्ख़, "फ़ासिल मानवाभ वानर और प्राचीनतम प्राक्-मानव", "उस्पेख़ी सोव्रेमेन्नोई बिओलोगिई", १९३८ खंड ९, भाग २)

20. В. П. Якимов, Ранние стадии антропогенеза. В сборнике «Происхождение человека и древнее расселение человечества».

(व० प० याकीमोव, "मानवोत्पत्ति की प्रारंभिक अवस्थाएं", "मनुष्य का उद्गम और आवादी का प्राचीन देशांतरगमन" नमक संग्रह मे)

21. S. D. Kaushic, *Indo-Tibetan Cradle Land of Humanity*, "Proc. Nat. Acad. Sci., India", Secto B, vol. XXXIV, pt. II, 1964, pp. 49-61.
(एस० डी० कौशिक, "मानवजाति का भारत-तिब्बती विकास-क्षेत्र", १९६४)

22. М. Ф. Нестурх, Ископаемые гигантские антропоиды Азии и ортогенетическая гипотеза антропогенеза Вейденрейха, «Ученые записки МГУ, вып. 166, стр. 29—46.
(म० फ़० नेस्तुर्ख, "एशिया के महाकाय फासिल वानर और वाइदेनराइख की मानवोत्पत्ति की नियतविकासीय परिकल्पना", "उच्योनिये ज़पीसकी मोस्कोव्स्कोगो गोसुदारस्त्वेन्नोगो उनिवेर्सितेता", खंड १६६)

В. П. Якимов, Рецензия на работу Кенигсвальда о гигантопитеке, «Советская этнография», 1955, № 1, стр. 153—155.
(व० प० याकीमोव, "जाइगेंटोपिथिकस पर केनिगसवाल्द के कार्य की समीक्षा", "सोव्येत्स्काया एत्नोग्राफ़िया", १९५५, अंक १)

23. М. А. Гремяцкий, К вопросу о филогенетических связях древнейших гоминид, «Краткие сообщения Института этнографии АН СССР», 1952, т. XV, стр. 62—71.
(म० अ० ग्रेम्यात्स्की, "प्राचीनतम प्राक-मानवों के उद्गम-संबंध", "क्रात्किये सोओब्शेनिया इंस्तितूता एत्नोग्राफ़िई अ०-एन० एस० एस० एस० एर०, १९५२, खंड १५)

24. М. Ф. Нестурх, Звенья родословной человека, «Природа», 1957, № 1, стр. 32—41.
(म० फ० नेस्तुर्ख, "मनुष्य की आनुवंशिकता की कड़ियां", "प्रिरोदा", १९५७, अंक १)

25. Н. О. Бурчак-Абрамович и Е. Г. Габашвили, Высшая человекообразная обезьяна из верхнетретичных отложений восточной Грузии (Кахетии), «Вестник Государственного музея Грузии», т. XIII-A, стр. 253—273.

(न० ग्रो० वुर्चाक-ग्रन्नामोविच तथा ये० ग० गावाश्वीली, "पूर्वी जार्जिया (काख़ेतिया) के उत्तर तृतीयक कल्प-निक्षेपों से प्राप्त उच्च मानवाभ वानर", "वेस्तनिक गोसुदारस्त्वेन्नोगो मुज़ेया ग्रूज़िई", खंड १३-ग्र)

26. В. П. Якимов, Открытие костных остатков нового представителя австралопитековых в Восточной Африке, «Вопросы антропологии», 1960, № 4, стр. 151—154.
(व० प० याकीमोव, "पूर्वी ग्रफ़्रीका में ग्रास्ट्रेलोपिथिकस के नये प्रतिनिधि के ग्रस्थ्यावशेष की खोज", "वोप्रोसी ग्रंत्रोपोलोगिई", १९६०, ग्रंक ४)

М. Ф. Нестурх, О новой находке черепа человекообразного существа в Восточной Африке, «Биология в школе», 1973, № 1, стр. 13—14.
(म० फ़० नेस्तुर्ख़, "पूर्वी ग्रफ़्रीका में मानवाभ प्राणी के कपाल की एक नई खोज", "बिग्रोलोगिया व श्कोले", १९७३, ग्रंक १)

М. И. Урысин, Люди или животные?, «Природа», 1973, № 1, стр. 30—37.
(म० इ० उरीसिन, "मानव ग्रथवा पशु?", "प्रिरोदा", १९७३, ग्रंक १)

См. также «Природа», 1973, № 2, стр. 77—78.
("प्रिरोदा", १९७३, ग्रंक २)

27. М. Ф. Нестурх, Против идеализма на фронте антропогенеза, «Фронт науки и техники», 1937, № 5, стр. 50—80.
(म० फ़० नेस्तुर्ख़, "मानवोत्पत्ति समस्या के मोर्चे पर भाववाद के विरुद्ध", "फ़्रोंत नऊकी इ तेख़निकी", १९३७, ग्रंक ५)

В. П. Алексеев, От животных к человеку, «Советская Россия», 1969.
(व० प० ग्रलेक्सेयेव, "पशुग्रों से मानव तक", "सोवेत्स्काया रोस्सीया", १९६९)

Я. Я. Рогинский, Проблемы антропогенеза, «Высшая школа», 1969.

(या० या० रोगीन्स्की, "मानव-उत्पत्तिविज्ञान की समस्याएं", "वीस्शाया श्कोला", १९६६)

28. Ю. Г. Шевченко, Индивидуальные и групповые вариации строения коры большого мозга (нижне-теменной области) современных людей. «Вестник Академии медицинских наук», 1956, № 5, стр. 35—45.
(यू० ग० शेवचेको, "आधुनिक मनुष्य की प्रमस्तिष्क प्रातस्था (निम्न पार्श्विका प्रदेश) में वैयक्तिक तथा सामूहिक वैभिन्य", "वेस्तनिक अकादेमीई मेदित्सीन्स्कीख़ नऊक", १९५६, अंक ५)

Ю. Г. Шевченко, Эволюция коры мозга приматов и человека, М., 1971.
(यू० ग० शेन्चेन्को, "प्राइमेटों और मनुष्य का प्रमस्तिष्क का विकास", मास्को, १९७१)

29. С. М. Блинков, Особенности строения головного мозга человека. Височная доля человека и обезьян, М., 1955, стр. 95—98.
(स० म० ब्लिन्कोव, "मानव-मस्तिष्क की सरचना की विशेषताएं। मनुष्य तथा वानरों मे शंख खंड", मास्को, १९५५)

30. F. Engels, *Dialectics of Nature*, F. L. P. H., M., 1954, p. 238.
(फ़्रेडरिक एंगेल्स, "प्रकृति में द्वंद्वात्मकता", विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को, १९५४)

31. В. И. Кочеткова, Палеонтология, ее современное состояние. В книге «Антропология. 1969». «Итоги науки», серия
(व० इ० कोचेतकोवा, "जीवाश्मविज्ञान और उसका वर्तमान विकास", "अन्त्रोपोलोगिया, १९६९"। "वैज्ञानिक सर्वेक्षण", "बिओलोगिया" माला, मास्को, १९७०)

32. Л. П. Астанин, Влияние физических упражнений на пропорции руки человека, «Природа», 1952, № 6, стр. 42—53.
(लं० प० अस्तानिन, "मनुष्य के हाथ के समानुपात पर शारीरिक व्यायाम का प्रभाव", "प्रिरोदा", १९५२, अंक ६)

В. Н. Жеденов, Сравнительная анатомия приматов, включая человека. Под редакцией М. Ф. Нестурха, М., 1962.
(व० न० जेदेनोव, "मनुष्य सहित प्राइमेटों की तुलनात्मक शरीर-रचना", म० फ० नेस्तुर्ख़ द्वारा संपादित, मास्को, १९६२)

33. Н. Н. Миклухо-Маклай, Путешествия, т. I, М., 1940, стр. 216.
(न० न० मिक्लूख़ो-माक्लाई, "यात्रा-विवरण", खंड १, मास्को, १९४०)

34. Я. Я. Рогинский, Величина изменчивости измерительных признаков черепа и некоторые закономерности их корреляции у человека. «Ученые записки МГУ», вып. 166, стр. 57—92.
(या० या० रोगीन्स्की, "कपाल मापों में उत्परिवर्तनों की सीमा और मनुष्य मे उनके सहबंधन के कुछ नियम", उच्योनिये ज़पीस्की मोस्कोव्स्कोगो गोसुदारस्त्वेन्नोगो उनिवेर्सितेता", खंड १६६)

35. Я. Я. Рогинский, М. Г. Левин, Антропология, изд. 2-е, 1963, стр. 448—451.
(या० या० रोगीन्स्की, म० ग० लेविन, "मानवविज्ञान", दूसरा संस्करण, १९६३)

М. Ф. Нестурх, Первоначальная прародина человека. В сб. «У истоков человечества (Основные проблемы антропогенеза)», М., 1964, стр. 7—32.
(म० फ़० नेस्तुर्ख़, "मानव की आदिभूमि", "मानव उत्पत्ति" नामक संग्रह मे, मास्को, १९६४)

36. М. Г. Левин, Новая теория антропогенеза М. Вайденрейха, «Советская этнография», 1946, № 1, стр. 213—218.
(म० ग० लेविन, "वाइदेनराइख़ का मानवोत्पत्ति का नया सिद्धांत", "सोव्येत्स्काया एत्नोग्राफ़िया", १९४६, अंक १)

37. Я. Я. Рогинский, Теория моноцентризма и полицентри ма в проблеме происхождения современного человека его рас, М., 1949.

(या० या० रोगीन्स्की, "आधुनिक मानव और उसकी प्रजातियों की उत्पत्ति की समस्या में एककेंद्रवादी तथा बहुकेंद्रवादी सिद्धांत", मास्को, १९४९)

38. Я. Я. Рогинский, Основные антропологические вопросы в проблеме происхождения современного человека. В сборнике «Происхождение человека и древнее расселение человечества», изд. АН СССР, 1951, стр 153—204

(या० या० रोगीन्स्की, "आधुनिक मानव की उत्पत्ति में मूल मानववैज्ञानिक प्रश्न", "मनुष्य का उद्गम और आबादी का प्राचीन देशांतरगमन" नामक संग्रह में, मास्को, १९५१)

Я. Я. Рогинский, Аргументы в пользу моноцентризма. «Природа», 1970, № 10, стр. 34—37.

(या० या० रोगीन्स्की, "एककेन्द्रवाद के पक्ष में कुछ तर्क", "प्रिरोदा", १९७०, अंक १०)

39. В. Р. Кабо, К вопросу о происхождении австралийцев и древности заселения Австралии (по антропологическим материалам), «Вопросы антропологии», 1961, № 7, стр. 77—94.

(व० र० काबो, "आस्ट्रेलियाई आदिवासियों के उद्गम का प्रश्न और आस्ट्रेलिया की आबादी की प्राचीनता (मानववैज्ञानिक सामग्री के अनुसार)", "वोप्रोसी अंत्रोपोलोगिई", १९६१, अक ७)

В. Р. Кабо, Происхождение и ранняя история аборигенов Австралии. «Наука», 1968.

("आस्ट्रेलिया के आदिवासियों की उत्पत्ति और प्रारंभिक इतिहास", "नऊका", १९६८)

40. С. А. Семенов, О сложении защитного аппарата глаз монгольского расового типа, «Советская этнография», 1951, № 4, стр. 156—179.

(स० म्र० सेम्योनोव, "मंगोलियाई प्रजातीय प्ररूप में भाग्र के संरक्षात्मक उपकरण का निर्माण, "सोव्येत्स्काया एत्नोग्राफ़िमा", '१९५१, मंक ४)

41. Н. Н. Чебоксаров, Н. А. Чебоксарова, Народы, расы, культура. М., 1971.
(न० न० चेबोक्सारोव, इ० म्र० चेबोक्सारोवा, "राष्ट्र, प्रजातियां, संस्कृति", मास्को, १९७१)

42. Т. Д. Гладкова, Человеческие расы, М., 1962.
(त० द० ग्लाद्कोवा, "मानव-प्रजातियां", मास्को, १९६२)

43. Charles Darwin, *The Descent of Man and Selection in Relation to Sex*. pp. 98-99
(चार्ल्स डार्विन, "मनुष्य का उद्गम मोर लिंग के संबंध में वरण,)

44. वही, पृ० २२१

45. М. Г. Левин, Международный конгресс по антропологии и этнографии «Советская этнография», вып. VI—VII, 1947, стр. 335—342.
(म० ग० लेविन, "म्रंतर्राष्ट्रीय मानवविज्ञान तथा जातिविज्ञान कांग्रेस", "सोव्येत्स्काया एत्नोग्राफ़िया", खड ६–७, १९४७)

46. Н. Н. Миклухо-Маклай, Собр. соч. т. I—V, 1950—1954.
(न० न० मिक्लूख़ो-माक्लाई, संग्रहीत रचनाएं, खंड १–५, मास्को, १९५०–१९५४)

Я. Я. Рогинский, Н. Н. Миклухо-Маклай, М., 1948.
(या० या० रोगीन्स्की, "न० न० मिक्लूख़ो-माक्लाई", मास्को, १९४८)

47. Н. Г. Чернышевский, О расах. Избранные философские сочинения, т. III, М., 1951, стр. 557—559.
(नि० ग० चेर्निशेव्स्की, "प्रजातियों के वारे में", संकलित दार्शनिक निबंध, खंड ३, मास्को, १९५१)

М. Г. Левин, Н. Г. Чернышевский о расах и расовой проблеме (к шестидесятилетию со дня смерти), «Советская этнография», 1949, стр. 149—155.

(म० ग० लेविन, "नि० ग० चेर्निशेव्स्की प्रजातियों तथा प्रजातीय समस्या के बारे में विचार, "सोव्येत्स्काया एत्नोग्राफ़िया", १९४९)

48. I. M. Sechenov, *Selected Physiological and Psychological Works*, F. L. P. H., Moscow, 1962.
(इ० म० सेचेनोव, "संकलित शरीरक्रियावैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक रचनाएं", विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को, १९६२)

49. V. I. Lenin, "Concluding Speech at the Third All-Russia Congress of Workers', Soldiers' and Peasants' Deputies".
(ब्ला० इ० लेनिन, मज़दूरों, सैनिकों तथा किसानों के प्रतिनिधियों की सोवियतों की तीसरी अखिल-रूसी कांग्रेस में दिया गया समाहारी भाषण, जनवरी, १९१८)

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विपयवस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के वारे में आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें वड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये:

२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को,
सोवियत संघ।